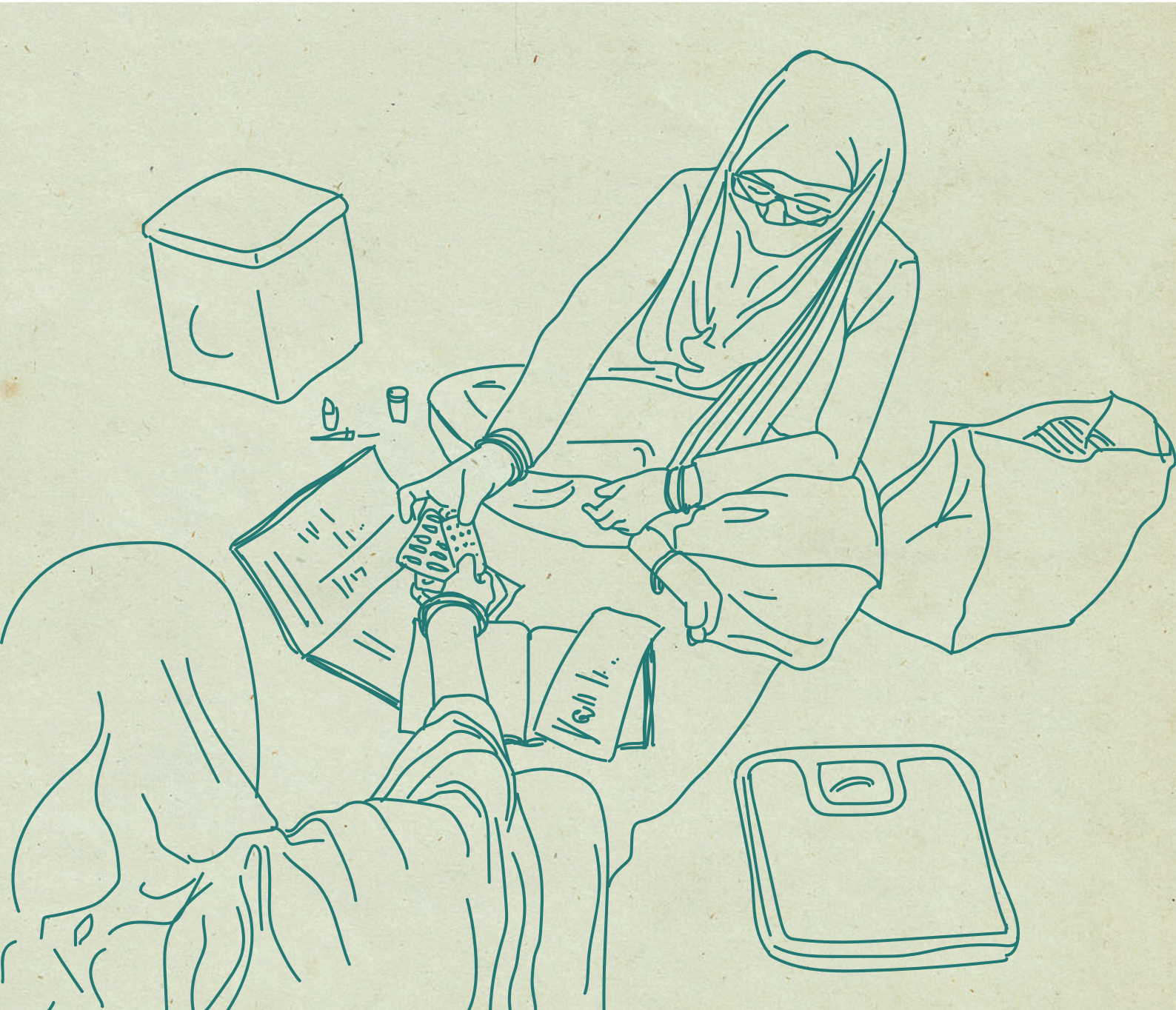


# ‘क्या हम फ्रंटलाइन के योद्धा नहीं हैं?’

कोविड-१९ के दौरान ज़मीनी स्तर पर काम कर  
रहे स्वास्थ्य सेवाकर्मियों के अनुभव





© 2021 Azim Premji University

This report may be reproduced by any method without fee for teaching or nonprofit purposes. The report shall not be used for commercial purposes. Rights are reserved under Creative Common Licence: Attribution + Non-Commercial + Share Alike. Any derivative works shall also be protected under the same license. For copying in any other circumstances, or for re-use in other publications, or for translation or adaptation, prior written permission must be obtained from the publisher.

# विषयसूची

- ५ शब्दावली
- ७ प्रस्तावना
- ९ "क्या हम फ्रंटलाइनके योद्धा नहीं हैं"  
महामारी के दौरान भय, प्रतिरोध और उदासीनता से झूझना
- १२ "मेरे पास गाँव वालों का समर्थन है: और मुझे क्या चाहिए?"  
संकट के समय परिवार, समुदाय और स्वास्थ्य प्रणाली का महत्त्व
- १३ "हम जब खुद ही मानसिक तनाव में हों, तो हम दूसरों की मदद कैसे कर सकते हैं?"  
महामारी के दौरान पेशेवर मांगों और खुद की देखभाल के बीच संतुलन
- १८ "यह कोई एक इंसान का काम नहीं"  
महामारी के दौरान सहयोग, समन्वय और संप्रेषण
- २१ "मुझे लगता है मैं मल्टीपर्पस (सर्वांगीण) हूँ"  
काम और उसकी जगह बदलते रहना
- २४ "हम अपना काम करते हैं पर जब तक लोग इलाज न करवाना चाहें, इसका कोई अर्थ नहीं"  
लोगों को भरोसा दिलाने की चुनौती
- २७ "मैं असहाय हूँ, मैं कुछ नहीं कर सकती | एक तरफ लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिल रही हैं, और हमें आर्थिक प्रोत्साहन ही नहीं मिल रहा"  
थकान, जोखिम, खतरे और अविश्वास के साथ काम करना!
- ३० "यदि हमें पीपीई किट्स दिए गए होते, तो हमारा काम काफी सुरक्षित हो जाता"  
जोखिम, प्रवासी और काम के बोझ का संतुलन साधना
- ३३ "आशा कार्यक्रम की सबसे बड़ी खामी है यह शब्दाडम्बर जिसमें कहा जाता है 'आशा कर्मी सब कुछ हैं'"  
कोविड-१९ महामारी के दौरान एक ब्लाक आशा कार्यक्रम समन्वयक के विचार
- ३८ "जब से आशा-कर्मी गाँवों में काम कर रही हैं, स्वास्थ्य संबंधी कोई समस्या नहीं हुई है"  
फ्रंटलाइन के स्वास्थ्य कर्मियों की परस्पर निर्भरता की स्वीकृति

- ४० "लोग अनमोल हैं लेकिन हमारी अपनी जरूरतें भी तो हैं"  
विलंबित भुगतान और कठिन परिस्थितियों में काम
- ४३ "मैंने अपने आप को नियति के हाथों छोड़ दिया है"  
अकेलेपन, मानसिक तनाव और उदासीनता से जूझना
- ४६ "मैं समर्पण भाव से लोगों को कोविड-१९ से बचाने का काम करती हूँ"  
महामारी में शंका और लांछन से बचना
- ४८ "कॉन्ट्रैक्ट कर्मों की तरह काम करते एक दशक हो गया है"  
कॉन्ट्रैक्ट स्वास्थ्यकर्मों की डामाडोल स्थिति
- ५१ "हम बहुत कुछ बर्दाश्त करते हैं। अधिकारी तो हमारे सिर पर बैठे रहते हैं"  
आशाओं, समुदाय और स्वास्थ्य अधिकारियों के बीच संवाद बनाना
- ५४ "अब हम डर नहीं रहे"  
तनाव, चिंता, डर और घबराहट से उबरना
- ५६ "हमें केवल 'कोरोना योद्धा' कह देने का कोई मतलब नहीं"  
आपदा के दौरान पहचान और सम्मान की मांग
- ५८ "मैंने कोविड-१९ को गांव में घुसने नहीं दिया"  
कार्याशील और सुविधासम्पन्न स्वास्थ्य व्यवस्था की खूबियां
- ६१ "मेरे घर-घर पहुंचकर बताने से लोगों को लगा कि मैं गांव में कोरोना फैला रही हूँ"  
आपदा के दौरान संदेह और लांछन
- ६४ "वे जानते हैं कि यदि कोई सेहत से जुड़ी परेशानी हो तो मैं उसकी जिम्मेदारी लूंगी"  
महामारी से पहले समुदाय और स्वास्थ्यकर्मों के बीच मेलजोल की अहमियत
- ६७ सीख और चिंतन

# शब्दावली

**आशा** – आशा, ग्राम स्तर एक मान्यताप्राप्त सामाजिक-स्वास्थ्य कार्यकर्ता होती हैं। समुदाय उनका चयन स्वैच्छिक ढंग से करता है और वह समुदाय के प्रति जवाबदेह होती हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को हासिल करने के लिए समुदाय के सदस्यों को एकत्र करना और स्वास्थ्य और उससे संबंधित जानकारी के बारे में लोगों को सजग बनाना उनकी जिम्मेदारी है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के रूप में यह कार्यक्रम २००५ में शुरू किया गया था।

**आशा संगिनी** – आशा संगिनी (आशा फैसिलिटेटर) किसी विशेष इलाके में दस से बीस आशा कार्यकर्ताओं के समूहों को परामर्श देते हैं, क्षमता निर्मित करते हैं और व्यक्तिगत आशा कार्यकर्ता की प्रगति पर निगरानी रखते हैं।

**आशा ब्लाक समन्वयक** – आशा ब्लाक समन्वयक (ब्लाक कोऑर्डिनेटर) की जिम्मेदारी है कि वह निर्धारित ब्लाक में आशा कार्यक्रम को अमल में लाएं, आशा कार्यकर्ताओं, सहायकों, संगठनकर्ताओं और सुपरवाइजर के प्रशिक्षण और गतिविधियों की निगरानी रखें एवं उनके द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं के क्रियान्वयन की निगरानी करें।

**ए एन एम (ANM)** – सहायक नर्स मिडवाइफ (औक्सिलियरी नर्स मिडवाइफ, दाई) ५००० लोगों की आबादी के बीच काम करनेवाली स्वास्थ्य कार्यकर्ता हैं। भारत के तीन-स्तरीय स्वास्थ्य सुरक्षा संगठनों के सबसे निचले स्तर सब-सेंटर (उपकेन्द्र) पर उनकी नियुक्ति होती है। समय से साथ ए एन एम की भूमिका बदली है। पहले वह मुख्यतः दाई के काम पर केन्द्रित थी, बाद में उसमें मां और शिशु के लिए अधिक व्यापक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करवाना, परिवार नियोजन सेवाएं उपलब्ध करवाना, पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा उपलब्ध करवाना, मामूली बीमारियों का इलाज और सुदूर गाँवों में स्थित छोटे उपचार केंद्र भी शामिल हो गए। ए एन एम १९५० के दशक से स्वास्थ्य नौकरशाही का हिस्सा हैं।

**ए डब्ल्यू डब्ल्यू (AWW)** – (आंगनवाड़ी कार्यकर्ता)- ग्राम स्तर की कार्यकर्ता हैं जो भारत सरकार द्वारा १९७० के दशक में लागू किए गए समन्वित शिशु विकास सेवाएं (आई सी डी एस) का हिस्सा होती हैं। वे बच्चों की शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों का ध्यान रखती हैं, तीन से पांच साल के बच्चों को स्कूल से पूर्व की शिक्षा देती हैं। छः साल से कम के बच्चों और गर्भवती एवं धात्री स्त्रियों को वे अतिरिक्त पोषण देने का काम भी करती हैं।

**एल एच वी (लेडी हेल्थ विजिटर)** – यह महिला स्वास्थ्य कर्मी जन स्वास्थ्य केन्द्रों पर देखभालकर्ता के रूप में नियुक्त होती हैं। वे ग्रामीण और शहरी इलाकों में समुदायों को कई तरह की सेवाएं देती हैं जिनमें बुनियादी नर्सिंग सेवा, माता शिशु स्वास्थ्य सेवा और सामुदायिक कर्मियों का प्रशिक्षण शामिल है।

**मितानिन** – मितानिन कार्यक्रम २००२ में छत्तीसगढ़ राज्य में शुरू किया गया जिसने आशा कार्यक्रम की नींव रखी है। मितानिन शब्द का स्थानीय भाषा में अर्थ है 'महिला मित्र'। ये सामुदायिक स्वास्थ्य स्वेच्छा सेविकाएँ होती हैं। इनकी जिम्मेदारी शहरी और ग्रामीण इलाकों में सजगता फैलाना, तथा स्वास्थ्य एवं उसके सामाजिक कारकों को एकजुट करके मजबूत करना होती है।

**मितानिन प्रशिक्षक** – स्रोत व्यक्ति (रिसोर्स पर्सन) होते हैं जो प्रशिक्षण देते हैं, परामर्शदाता होते हैं और मितानिन की सहायता करते हैं (आशा सहायक की तरह)।

**पी एच सी** – प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तीन-स्तरीय जन स्वास्थ्य ढाँचे का एक हिस्सा है। समुदाय और मेडिकल अधिकारी के बीच यह पहला संपर्क बिंदु है। रोग निवारक और निरोधक स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराना इसकी जिम्मेदारी है।

**वीएचएनडी** – राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन २००५ के तहत शुरू किये गए प्रत्येक गाँव में हर महीने आयोजित किए जानेवाले ग्रामीण स्वास्थ्य और पोषण दिवस बहुत महत्वपूर्ण हैं जिनके जरिये ग्राम स्तर पर जच्चा-बच्चा को स्वास्थ्य और पोषण की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं।

**फ्रंटलाइन स्वास्थ्य कार्यकर्ता** – फ्रंटलाइन स्वास्थ्य कार्यकर्ता ऐसे लोगो को कहते हैं जो स्वास्थ्य व्यवस्था में जमीनी स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से समुदाय के साथ रहकर स्वास्थ्य से सम्बंधित काम कर रहे होते हैं। इसके अंतर्गत आशा कार्यकर्ता, नर्स, मिडवाइफ, सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता, डॉक्टर, फार्मासिस्ट इत्यादि। ये सभी दूरस्थ और ग्रामीण समुदाय की देखभाल करते हैं और उन्हें स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराते हैं।



## प्रस्तावना

‘क्या हम फ्रंटलाइन योद्धा नहीं हैं?’ यह एक सामुदायिक स्वास्थ्यकर्मियों का सवाल है। कोविड-१९ महामारी के दौरान जब जमीनी स्तर पर काम करने वाले स्वास्थ्यकर्मियों डट कर काम कर रहे थे, तभी मई २०२० में आयोजित एक वेबिनार में एक स्वास्थ्यकर्मियों ने यह सवाल पूछा।<sup>१</sup> यह सवाल अन्य कई स्वास्थ्यकर्मियों का भी है जो महामारी के दौरान जान का जोखिम उठाकर समुदाय को सुरक्षित रखने के लिए काम कर रहे थे। फिर भी यह साफ़ है कि उनके योगदान को पर्याप्त मान्यता नहीं मिली है। इस संकलन का विचार सामुदायिक स्वास्थ्यकर्मियों की आवाज को मजबूत करने की ज़रूरत को महसूस करते हुए आया। वेबिनार के दौरान स्पष्ट हुआ कि ऐसे अनुभवों को साझा करने के लिए मंच तो कम हैं लेकिन सहयोग जुटाने और सीख पाने के कई अवसर जरूर उपस्थित हैं।

हम आपके समक्ष कोविड-१९ के दौरान उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, अरुणाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों के बीस स्वास्थ्यकर्मियों के दैनिक अनुभव साझा कर रहे हैं। जुलाई और नवम्बर २०२० के बीच उनसे टेलीफोन पर हुई बातचीत के दौरान ये कहानियां सामने आयीं। ये अनुभव स्वास्थ्यकर्मियों के उस वर्ग से लिए गये हैं जो स्वास्थ्य प्रणाली और समुदाय के साथ कार्य करते हैं। इनमें आशा, आशा सहायक, सहायक नर्स दाई, मितानिन और मितानिन प्रशिक्षक शामिल हैं। हर अनुभव अनूठा है क्योंकि यह विशेष भौगोलिक, समुदाय, परिवार, स्वास्थ्य प्रणाली के संयोग से निकला है और हमें बताता है कि महामारी कैसे क्षेत्रविशेष में उद्घाटित हुई। वैसे तो हर अनुभव अनूठा है लेकिन इनमें साझा तत्व यह है कि सामुदायिक स्वास्थ्यकर्मियों ने फ्रंटलाइन योद्धाओं का काम किया है। उनके अनुभवों से पता चला कि जवाबदेही सहित कई चुनौतियाँ उनके सामने आयीं पर साथ ही सहयोग, समर्थन और महामारी से जूझने की शक्ति बटोरने के कई अवसर भी मिले।

यह कहानियां उन वार्तालापों को रेखांकित करती हैं जो हमने (अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के साथ सेहर, सेंटर फॉर हेल्थ एंड सोशल जस्टिस, दिल्ली की एक इकाई, इनोवेटिव अलायन्स फॉर पब्लिक हेल्थ एंड फोरम फॉर मेडिकल एथिक्स सोसाइटी, पुणे) नवंबर २०१९ में COPASAH नेटवर्क (कम्युनिटी ऑफ़ प्रैक्टीशनर्स ऑन एकाउंटेबिलिटी एंड सोशल एक्शन इन हेल्थ) के अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी के विषय ५। ‘समुदाय और स्वास्थ्य देखभाल कार्यकर्ताओं: फोर्जिंग गठजोड़’ पर की गयी थी।<sup>२</sup> इस कार्य में हमने अपने वर्तमान नेटवर्क के जरिये बीस स्वास्थ्यकर्मियों से संपर्क किया और उनके अनुभवों को शामिल किए गए हैं। इस नेटवर्क में इनोवेटिव अलायन्स फॉर पब्लिक हेल्थ, नेशनल अलायन्स फॉर मैटरनल हेल्थ एंड ह्यूमन राइट्स (एन.ए.एम.एच.एच.आर.), आशा संगठनों और कोपासा (कम्युनिटी ऑफ़ प्रैक्टीशनर्स ऑन एकाउंटेबिलिटी एंड सोशल एक्शन इन हेल्थ) शामिल थे।

<sup>१</sup> <https://fmesinstitute.org/wp-content/uploads/2020/07/Blog-13-HEaL-Institute-%E2%80%93IJME-Covid-19-Insights-July-16-2020.pdf>

<sup>२</sup> <https://www.copasahglobalsymposium2019.net/theme-5-health-care-workers.html>

यह अनुभव अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की एक टीम ने एकत्रित और दर्ज किए जिसके सदस्य थे: अरिमा मिश्रा, संजना संतोष और दीपक कुमार। इनके अलावा सहर की हमारी सहयोगी संध्या गौतम ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। सहर सेंटर फॉर हेल्थ एंड सोशल जस्टिस की एक इकाई है और इस यात्रा में शुरू से ही हमारे साथ है। नीतिगत नवाचार को स्वीकृति देने के लिए हम अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के इंस्टीट्यूशनल रिव्यू बोर्ड के आभारी हैं। उनकी गोपनीयता बचाए रखने के लिए हमने कहानियों में स्वास्थ्यकर्मियों के नाम छिपाये हैं। काम में सहयोग के लिए एडवर्ड प्रेमदास पिंटो, संतोष महिन्द्रकर, सुनीता बंदेवर और सना थापा को धन्यवाद। रेचल वर्गीस के सहयोग के लिए हम कृतज्ञ हैं; वह हमारी पूर्व छात्र हैं और उन्होंने मूल दस्तावेज की सावधानी से प्रूफरीडिंग की है। हालाँकि हममें से कई लोगों ने इसमें मदद की है, फिर भी यह संकलन स्वास्थ्यकर्मियों का है जो इसके वास्तविक शिल्पकार हैं। अपनी यात्रा में हमें शामिल करने के लिए और अपने अनुभव व्यापक तौर पर साझा करने के लिए उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाए वह कम है।

**अरिमा मिश्रा**

**संजना संतोष**

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी



# “क्या हम फ्रंटलाइन के योद्धा नहीं हैं”

## महामारी के दौरान भय, प्रतिरोध और उदासीनता से झूझना

सृष्टि मध्य प्रदेश के भिंड जिले में आशा सहायक के रूप में काम करती हैं। २००७ में उन्होंने आशा के तौर पर काम करना शुरू किया और २०१४ में सुपरवाइजर बन गईं। आशा सहायक के रूप में सृष्टि १० आशा कर्मियों के काम में सहयोग करती हैं, उन्हें निर्देश देती हैं और उनपर निगरानी भी रखती हैं। कोविड-१९ के समय राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन के दौरान उनके दिन लंबे और थकाऊ होते थे-सुबह जल्दी उठकर अपने इलाके में जाने के लिए उन्हें वाहन ढूंढना पड़ता था क्योंकि परिवहन आसानी से उपलब्ध नहीं होता था। कभी-कभी कुछ आशा सहायक मिलकर किसी प्रकार से वाहन का इंतज़ाम करते थे और गाँवों में आशा कार्यकर्ताओं से मिलने जाते थे। फिर भी कई दिन सृष्टि को छह-छह घंटे पैदल चलकर किसी आशा कार्यकर्ता से मिलने जाना पड़ता था। वह बताती हैं कि आशा और आशा सहायकों ने किस तरह महामारी के दौरान प्रत्येक दिन चुनौतियों का सामना किया।

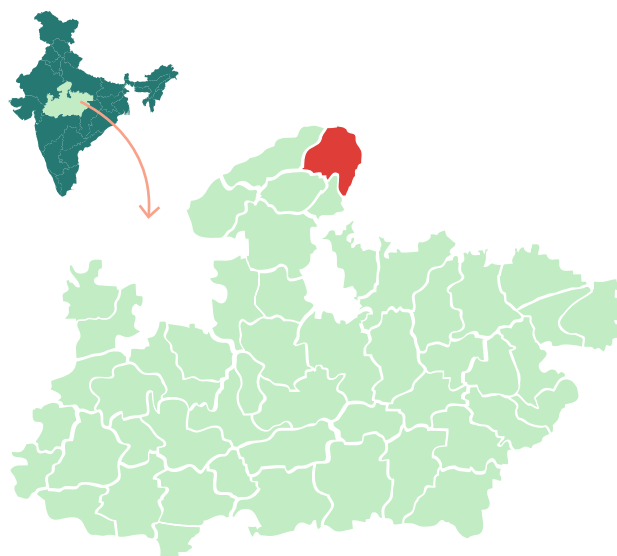
### भिंड जिला

जनसंख्या: १७०३५६२ (२०११)

राज्य: मध्य प्रदेश

भाषा: हिंदी

मुख्यालय: भिंड



## भय से बचाव और खुद की सुरक्षा

सृष्टि ने माना कि खुद उन्हें, और सभी आशा कार्यकर्ताओं को महामारी से संक्रमित होने का डर था। स्वास्थ्य विभाग द्वारा सैनिटाइज़र या मास्क उपलब्ध नहीं कराया गया था इसलिए भय बढ़ गया था। उन्होंने स्पष्ट किया कि आशा सहायक के तौर पर वह सुपरवाइजर का काम खत्म करने के बाद ही घर जा कर खुद को सैनिटाइज़ कर पाती थी। फिर भी, आशा कार्यकर्ता उन सभी परिवारों के करीबी लोगों के संपर्क में थीं जो क्वारंटाइन में थे, वे उनके मलेरिया-स्लाइड जमा करती थीं, बैठकों में हिस्सा लेती थीं। इससे उनके खुद संक्रमित होने का खतरा बढ़ जाता था। जब उनको पता चला कि कोविड -१९ से संक्रमित कोई व्यक्ति बगैर किसी लक्षण का भी हो सकता है तो उनकी चिंता और बढ़ी; उनके पास यह जानने का कोई तरीका नहीं था कि वे स्वयं संक्रमित थीं या नहीं क्योंकि टेस्ट नहीं हो रहे थे।

उनकी गाँव में स्थिति ये हो गयी थी कि गाँव में लोग उनको वायरस फैलाने वाले के नज़र से देखने लगे थे। सरकार द्वारा उन्हें सिर्फ एक डिस्पोजेबल मास्क दिया गया था जो अपर्याप्त हो गया, तब आशा संगठन ने साबुन और मास्क खरीदने पर पैसे खर्च करने का फैसला किया क्योंकि संगठन की सदस्य रोज़ मास्क खरीदने की स्थिति में नहीं थीं। उनकी दैनिक प्रोत्साहन राशि करीब ३० रुपये थी। सहायकों ने १००० रुपये की मदद की ताकि कपड़ा खरीदा दे जा सके और उससे आशा कार्यकर्ता सभी के लिए मास्क बना सकें।

सृष्टि को अपने परिवार और बच्चों को भी संक्रमण से बचाने की चिंता में लगी रहती थी और वह उनसे अलग रहा करती थी। वह याद करके बताती हैं कि वह अपने बेटे के जन्मदिन पर नहीं जा पाई थीं जो अपने मामा के साथ दूसरे शहर में रह रहा था, वह नहीं चाहती थी कि वो उससे मिलने जाए और संक्रमित हो जाये।

## — लोगों से बातचीत और घर पर क्वारंटाइन को आसान बनाया —

मार्च-जून, २०२० के दौरान पहले लॉकडाउन के समय जो लोग दूसरे राज्यों या जिलों से लौट रहे थे, उन्हें घर पर अलग-थलग करने में उनके परिवारों की मदद करने के अलावा सृष्टि ने दो और चुनौतियों को रेखांकित किया। अक्सर तो कई परिवार कई वर्षों बाद लौट रहे थे; उनके घर इस हालत में नहीं रहे थे कि उनमें रहा जा सके, उनमें जगह भी कम थी और शौचालय या पानी का कनेक्शन भी नहीं था, उन्हें सुरक्षित तरीके से क्वारंटाइन करना एक समस्या थी। दूसरी चुनौती यह थी कि गरीब परिवारों के लिए पैसों के आभाव में उनका घर में रहना मुश्किल था। अक्सर उन्हें काम ढूँढने के लिए बाहर निकलना पड़ता था। जब आशा कार्यकर्ता ऐसे लोगों को क्वारंटाइन के लिए कहतीं तो वे कहते कि उनके लिए आवश्यक वस्तुएं खरीदी जाएँ या घर पर ही उपलब्ध करा दी जाए।

सृष्टि ने कहा: “जब लोग भूखे हों, उनके पास पर्याप्त पैसे न हों तो उन्हें साबुन से हाथ धोने और घर पर रुकने के लिए कैसे कहा जा सकता है? गरीब परिवारों के लिए ये सब करना व्यवहारिक नहीं होता। इसलिए हम सुझाव देते हैं कि वे खेतों में काम करने जा सकते हैं पर इस बात का ध्यान रखें कि उनके मुँह और नाक साफ़ कपड़े से ढंके रहें। यह जरूरी है कि गाँव वाले आशा कार्यकर्ता में अपना भरोसा न खोएं व उनका विश्वास करें।” सृष्टि अपनी भूमिका के बारे में बताते हुए कहती हैं कि सहायक के रूप में मेरी भूमिका “समुदाय को आशा के साथ जोड़े रखना सुनिश्चित करना था”।

## — समुदायों में सामान्य स्वास्थ्य सेवाएं बाधित हुई —

हालांकि शुरुआत में सामान्य स्वास्थ्य सेवाएं और बैठकें स्थगित हो गई थीं। बच्चे के जन्म से बाद उसकी देखभाल, मलेरिया के लिए टेस्ट और बाकी स्वास्थ्य सेवाएं अप्रैल २८, २०२० के बाद फिर से शुरू हो गईं। सृष्टि ने कहा कि आशा कार्यकर्ताओं को महामारी के दौरान माताओं की देखभाल करने में दिक्कत हुई क्योंकि कई माताओं ने घर पर ही बच्चे को जन्म देने की ठान ली थी। उन्हें डर था कि अस्पताल में उन्हें संक्रमण हो सकता है। ऐसी स्थिति में आशाओं ने दाइयों से सहायता ली और स्थिति जटिल होने पर ही अस्पतालों की मदद ली गई। घर में बच्चे को जन्म देने में मदद करने के बावजूद आशा कार्यकर्ताओं को

अस्पतालों में बच्चे को जन्म देने में मदद करने पर मिलने वाले आर्थिक प्रोत्साहन राशी नहीं मिली। एक और चुनौती यह थी कि दवाओं की सप्लाई कम होने पर ज्वर, डायरिया और पीठ के दर्द जैसी सामान्य बीमारियों के मरीजों की ठीक से देखभाल नहीं हो पाती। सृष्टि ने स्पष्ट किया कि महामारी से पहले आशा-कर्मियों ये दवाएं अपनी नियमित मासिक बैठकों के दौरान प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों से ले लिया करती थीं। पर अब यह मुमकिन नहीं हो पाता क्योंकि बैठकें हो नहीं पा रही और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र इन बुनियादी दवाओं का स्टॉक नहीं रखते थे।

## “हमें भी मान्यता मिले, क्या हम फ्रंटलाइन के योद्धा नहीं?”

महामारी से पहले और उसके दौरान कई कार्य करने के बावजूद सृष्टि को अफ़सोस है कि स्वास्थ्य प्रणाली आशा-कार्यकर्ताओं के प्रति लापरवाह है और उन्हें मान्यता नहीं देती। उनका कहना है कि आशा संगठनों को ‘सौतेले बच्चों’ की तरह देखा जाता है। समस्याओं के लिए उन्हें दोष दिया जाता है और कोई सहानुभूति नहीं दिखाई जाती। सरकारी फेहरिस्तों और सर्कुलर में शामिल न किया जाना तकलीफ़ देता है। सृष्टि के शब्दों में: “ऐसा लगता है जैसे हमारा कोई वजूद ही न हो”। आशा संगठनों ने कई बार मुख्यमंत्री के कार्यालय और स्वास्थ्य विभाग को ज्ञापन दे कर, पत्र लिख कर एवं विडियो भेज कर आशा कार्यकर्ताओं के लिए बेहतर आर्थिक प्रोत्साहन की मांग की। पर कोई जवाब नहीं आया। ‘घर बैठे लोगों’ के लिए भी आर्थिक पैकेज की घोषणा हुई, पर आशा संगठनों के लिए नहीं किया गया। इससे यह महसूस होता है कि हमारे साथ सौतेला व्यवहार हुआ है। सृष्टि कहती हैं: “फ्रंटलाइन के योद्धाओं के प्रति आभार व्यक्त करते समय डॉक्टर, नर्स, सफाईकर्मियों और अन्य के नामों का ज़िक्र होता है, लेकिन आशा-कार्यकर्ताओं का ज़िक्र भी नहीं होता है। हम भी जोखिम उठा कर काम करते हैं और अक्सर अपने निर्धारित कार्यों से बहुत अधिक काम भी कर लेते हैं। क्या हम योद्धा नहीं हैं?”

सृष्टि ने बताया कि मजबूत स्वास्थ्य विभाग और स्थानीय शासन की अनुपस्थिति में भी आशा-कर्मियों ने आशा संगठनों के माध्यम से अपने बचाव के लिए सामान तैयार किये, खुद वाहनों का इंतजाम किया और गाँवों में गयी। यहाँ तक कि जब प्रवासी मजदूर वापस गाँव लौट रहे थे तब आंगनवाड़ी की मदद से उनके लिए भोजन की व्यवस्था भी की। उनका कहना है: “कोई भी कोरोनाकाल को भूल नहीं सकता। हम चाहते हैं कि महामारी के समय में हमारे योगदान को भी लोग याद रखें और भूल न जाएँ”।

# “मेरे पास गाँव वालों का समर्थन है: और मुझे क्या चाहिए?”

## संकट के समय परिवार, समुदाय और स्वास्थ्य प्रणाली का महत्त्व

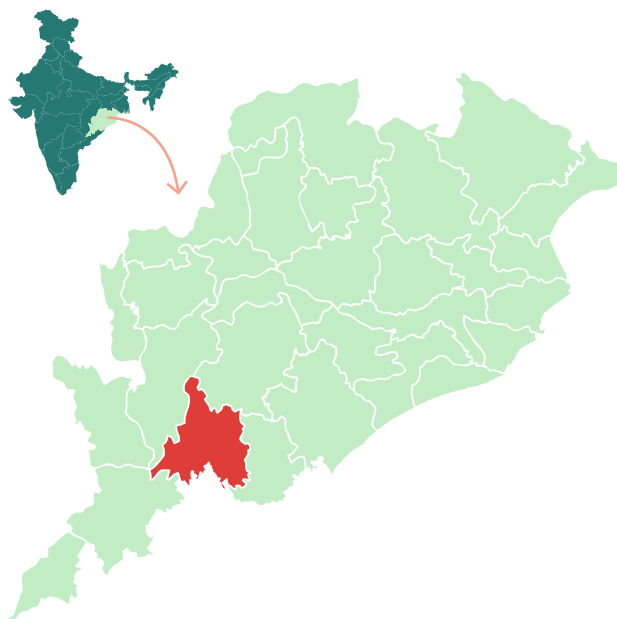
किमाती ओडिशा के रायगडा जिले में आशा-कार्यकर्ता हैं। वह २०१० से एक गाँव में काम कर रही हैं जिसे हाल ही में गुनुपुर नगरपालिका के शहरी प्रशासन में जोड़ लिया गया है। अपने इलाके में लोग उन्हें जानते हैं क्योंकि इलाके में उनके परिवार का अच्छा प्रभाव है और वह खुद भी स्वयंसेवी संगठनों और गाँव की अन्य गतिविधियों में सक्रिय रहती हैं। गाँव के लोगों ने आशा के पद के लिए उनके नाम का प्रस्ताव रखा। तभी से वह सामाजिक सहयोग के साथ काम कर रही हैं। किमाती ने बताया कि उनके पिता पास के ही ज़िले में सरपंच थे और इस वजह से वह राजनीति में भी सक्रिय हो गईं और जनसेवा के लिए प्रेरित हुईं। उन्होंने बताया कि समुदाय और स्वास्थ्य अधिकारियों के सहयोग से उन्हें अपने काम में काफी मदद मिली, यह बात उन्हें बहुत संतोष देती है।

रायगडा जिला

जनसंख्या: ९६१,९५९ (२०११)

राज्य: ओडिशा

भाषा: ओड़िया



## समुदाय और परिवार का सहयोग

किमाती बताती हैं कि दूसरी जातियों के लोगों और आदिवासी समुदायों के साथ काम करने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं आती। अपने काम के जरिये वह उन सब के साथ रिश्ते बना लेती हैं। उन्हें गर्व है कि वह समुदाय को मास्क पहनने और सामाजिक दूरी बनाने के लिए समझा लेती हैं। “मैं बच्चों के साथ मिलकर खेलना पसंद करती हूँ। महिलाएं भी साथ बैठ कर बातें करना पसंद करती हैं।” मैं उनसे कहती हूँ: “आपको जरूर खेलना चाहिए, बैठ कर बातें भी करो, पर थोड़ी दूरी बना कर। यदि आप रोग को आमंत्रित

करना चाहते हैं तो जैसा चाहे करें, पर यदि आप इससे बचे रहना चाहते हैं तो दूरी बनाये रखें, बातें करें पर मास्क लगाकर” | किमाती ने कहा कि लोगों ने उन पर जो विश्वास जताया उससे वो कोविड-१९ से सम्बंधित नियमों को लागू कर पाने में कामयाब हुई।

सहायक नर्स (ए एन एम) की मदद से किमाती ने सुनिश्चित किया कि जच्चा-बच्चा के लिए सामान्य स्वास्थ्य सुविधाएँ जारी रहें। वह इस बात का भी खयाल रखती हैं कि बच्चे के जन्म के लिए मायके आनेवाली गर्भवती स्त्री को ठीक से क्वारंटाइन किया जाए, उसका टेस्ट किया जाए और भावनात्मक तौर पर भी उसकी सहायता की जाए क्योंकि उसके अन्दर महामारी का अतिरिक्त भय भी रहता था।

किमाती अपने पति और बेटी को उनसे लगातार मिलनेवाले समर्थन का श्रेय देती हैं। इसकी वजह से ही वह निर्भीक होकर अपना काम कर पाती हैं। “मेरे पति मेरा बहुत साथ देते हैं। जब मैं कोविड ड्यूटी से लौटती हूँ, वही मुझे नहाने के लिए गर्म पानी देते हैं। मेरे काम से देर में लौटने पर उन्हें कभी आपत्ति नहीं होती।”

## स्वास्थ्य व्यवस्था द्वारा सहयोग

अपनी बातचीत में किमाती बार-बार स्वास्थ्य व्यवस्था से मिले सहयोग की बात कहती हैं। “मुझे अपनी ए एन एम दीदी से पूरा सहयोग मिलता है; एल एच वी तो मेरी मां के समान हैं। अपने सुपरिन्टेन्डेंट सर से मैं टेलीफोन पर जब चाहे बात कर लेती हूँ। उन सभी का मुझ पर भरोसा है और वे जानते हैं कि मैं अपने काम के प्रति समर्पित हूँ। जब मैं समझ नहीं पाती कि किसी स्थिति में क्या करूँ, या कौन सी दवा दूँ, तब मैं ए एन एम या एल एच वी से सलाह लेती हूँ”।

इस सहयोग के कारण उनके लिए अपने गाँव में लोगों के लिए बेहतर स्वास्थ्य सहायता की व्यवस्था करना आसान हुआ है। उन्होंने गर्व से कहा कि उनके गाँव में आदिवासी समुदायों की महिलाओं ने तीन से साढ़े तीन किलो के बच्चों तक को जन्म दिया। उन्होंने सुनिश्चित किया कि गर्भवती महिलाओं को गर्भावस्था के चौथे महीने से ही आयरन, फोलिक एसिड की टेबलेट्स और दूसरे सप्लीमेंट्स मिलते रहें। ये सभी उन्होंने अस्पताल से प्राप्त किये। वह महिलाओं को प्रोत्साहित करती है कि वे पोषक भोजन बनायें (उनको वह आहार बनाने के तरीके भी बताती हैं)। यह भोजन आंगनवाड़ी केन्द्रों के जरिये राशन की दुकानों से मिलने वाले अनाज के पैकेट से बनता है।

कोविड-१९ के दौरान स्वास्थ्य अधिकारियों का सहयोग बहुत महत्वपूर्ण रहा है। किमाती को स्पष्ट जानकारी दी गई थी कि महामारी के दौरान उन्हें क्या करना है। उन्हें पर्याप्त मास्क, ग्लव्स और सैनिटाइज़र भी दिए गये थे। शुरू में कोविड ड्यूटी पर जाने में उन्हें डर लगता था पर बाद में वरिष्ठ अधिकारियों ने प्रोत्साहित किया। किमाती ने बताया कि उन्हें महसूस होता है कि स्वास्थ्य-व्यवस्था ने उनकी इज्जत की और उन्हें पुरस्कृत भी किया।



## उपाधियों, थाली और ताली बजाने से आगे

महामारी के दौरान आशा-कर्म के तौर पर काम करने के किमाती के अनुभव बड़े सकारात्मक रहे हैं क्योंकि उन्हें समुदाय, अपने परिवार और स्वास्थ्य-व्यवस्था से बहुत सहयोग मिला। इतना अधिक कि किमाती अपने काम के भुगतान के बारे में ज्यादा बात नहीं करतीं। “मुझे गाँव के लोगों का सहयोग मिला हुआ है। और मुझे क्या चाहिए? यदि मैं किसी वाहन के इन्तजार में रास्ते पर खड़ी हूँ, तो कोई वाहनवाला रुक कर पूछ लेता है: ‘दीदी आप कहाँ जा रही हैं, मैं आपको छोड़ देता हूँ’। यह काम पैसे कमाने के लिए नहीं किया जाता बल्कि लोगों की सेवा के लिए किया जाता है। मेरे लिए दुआ करें कि पैसे का लोभ मेरे भीतर न आये। मैं जो करती हूँ, उसमें मुझे संतोष मिलता है। मैं इतने बड़े-बड़े लोगों से मिली हूँ, यह बड़ी बात है। मुझे लोगों से बहुत इज्जत मिलती है। मुझे खुशी है कि जब दुनिया इतने गंभीर स्वास्थ्य संकट में जकड़ी है, ऐसे में मेरे लिए कुछ करने को है”।

किमाती को महामारी के दौरान भी जो साहस और प्रोत्साहन मिल रहा है उसकी वजह है स्वास्थ्यकर्मियों, समुदाय और परिवार से मिलने वाला सहयोग साथ ही सुरक्षा के लिए हर चीज़ का उपलब्ध होना और बड़े अधिकारियों तक पहुँच होना जिसकी वजह से उसकी शिकायतें और संदेह दूर हो सकें। “मेरे घर के सामने एक मन्दिर है। जब मैं बाहर जाती हूँ, मैं भगवान से कहती हूँ कि तुम मेरा ध्यान रखना, मैं अपना कर्तव्य निभाने जा रही हूँ और मुझे भरोसा है कि मुझे कोई नुकसान नहीं होगा”।



# "हम जब खुद ही मानसिक तनाव में हों, तो हम दूसरों की मदद कैसे कर सकते हैं?"

## महामारी के दौरान पेशेवर मांगों और खुद की देखभाल के बीच संतुलन

शिल्पा पिछले १२ वर्षों से मध्य प्रदेश के ग्वालियर शहर में आशा के रूप में कार्य कर रही हैं। वह १२००-१५०० लोगों की आबादी या करीब २५० परिवारों के लिए जिम्मेदार हैं। महामारी के शुरूआती दिनों में शिल्पा और अन्य आशा-कर्मियों ने एक ही क्षेत्र में कई सर्वे किये। परिवहन की सुविधा न होने के कारण वे बुरी तरह थक कर चूर हो जाती थीं। उनकी नियुक्ति एक कन्टेनमेंट ज़ोन में थी फिर भी उन्हें उन्हें व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए पर्याप्त उपकरण नहीं दिए गए थे। महामारी के दौरान शिल्पा का अनुभव दर्शाता है कि आशा-कर्मियों के लिए अपनी चिंताओं को प्रभावी तरीके से व्यक्त कर पाने, अपनी जानकारीयां साझा करने, सीखने, और बगैर भय के काम करने के लिए कोई जगह या अवसर उपलब्ध नहीं हैं।

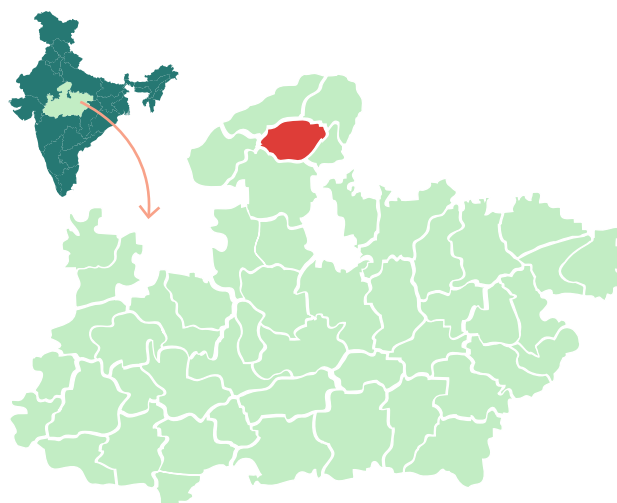
ग्वालियर जिला

जनसंख्या: २०३०५४३ (२०११)

राज्य: मध्य प्रदेश

भाषा: हिंदी

मुख्यालय: ग्वालियर



## एकत्रित डेटा का क्या होता है?

शिल्पा ने कहा कि उसके वार्ड में आशा-कर्मियों ने एक ही इलाके के कई सर्वेक्षण किये। सबसे पहले, उन्हें बताया गया कि वे प्रविष्टियों के लिए आंगनवाडी रजिस्टर का इस्तेमाल करें। फिर उसी सर्वेक्षण को जनगणना फॉर्म का उपयोग करके दोहराया गया। डिजिटल उपकरण की मदद से उन्हें फिर से यह करने को कहा गया। जब कुछ इलाकों को कन्टेनमेंट ज़ोन घोषित किया गया तब यह सर्वेक्षण फिर किए गए। शिल्पा ने बताया: "हमने तीन से चार बार डेटा एकत्र किये और भेजे, और फिर भी वार्ड कार्यालयों से फ़ोन आते रहे कि और डेटा भेजे जाएँ। मुख्यतः हमें एक ही काम बार बार करना पड़ता और रोज़ फेहरिश्त

बनानी और भेजनी पड़ती, क्योंकि कार्यालय में बैठे लोग बदलते रहते थे”। इसके अतिरिक्त, स्वास्थ्य अधिकारियों ने कभी भी यह स्पष्ट नहीं किया कि इन सर्वेक्षणों का, जो एक छोटी अवधि में एक ही इलाके में किये जा रहे हैं, उद्देश्य क्या है। परिणामस्वरूप, आशा-कर्मियों को समुदाय के सदस्यों की झल्लाहट भी झेलनी पड़ती थी क्योंकि उन्हें यह समझ नहीं आता था कि सर्वेक्षण बार-बार क्यों हो रहे हैं। शिल्पा ने बताया कि डेटा लोगों के लक्षणों के बारे में एकत्रित किये जाते थे पर उसके बाद आवश्यक इलाज नहीं होता था, जिसकी वजह से समुदाय में परेशानी बढ़ जाती थी।

“हम जानकारीयां देते रहते हैं पर समस्याओं का हल नहीं मिलता। समूचे वार्ड के लिए एक डॉक्टर को जिम्मेदारी दी जाती पर वह भी जानकारीयों को इकट्ठा करके वापस वार्ड कार्यालय भेज देता क्योंकि उसके पास रोगी के लिए पर्याप्त दवाएं न होतीं। हमने दिल के मरीजों के नाम लिखकर भेजे जिनहोने दवाओं की मांग की थी, लेकिन इस जानकारी के आधार पर भी उन्हें दवाएं नहीं दी गई थी।”

## निराश स्वास्थ्यकर्मि

शिल्पा ने कहा कि स्वास्थ्यकर्मि होने के बावजूद वह लॉकडाउन के समय असहाय महसूस करती थी कि वह लोगों की मदद नहीं कर पाती क्योंकि उसके इर्द-गिर्द स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ या तो अपर्याप्त थीं या उपलब्ध नहीं थीं। महामारी के दौरान ज़्यादातर निजी अस्पताल बंद पड़े थे और सरकारी जिला अस्पतालों पर बोझ काफी ज्यादा बढ़ गया था। स्वास्थ्य कर्मियों के काम और अस्पतालों के बेड कोविड-१९ के मामलों के लिए आवंटित होने के कारण नियमित स्वास्थ्य सेवाएं और वर्तमान बीमारियों के लिए चिकित्सकीय सुविधाएँ भी प्रभावित हुईं। शिल्पा ने बताया, “अब सभी रोगी, चाहे वे दिल की बीमारी के हों, या ज्वर से पीड़ित हों या फिर किसी स्नायु-संबंधी बीमारी से, उन्हें दवाओं के लिए एक ही पंक्ति में खड़ा रहना पड़ता था। पहले, अलग-अलग काउंटर हुआ करते थे, पर अब सरकार ने समूची व्यवस्था को चौपट कर डाला है और लोग सुबह सात बजे से शाम छह बजे तक लाइन में खड़े होते हैं और कभी-कभी तो दूसरे दिन तक इन्तजार करते हैं।” उन्होंने बताया कि मजबूत प्राथमिक स्वास्थ्य-व्यवस्था न होने के कारण लोग सुदूर जगहों से पैदल चल कर आने के लिए भी मजबूर हैं।

शिल्पा हताश हैं कि अपना कर्तव्य ईमानदारी से निभाने के बावजूद वह लोगों की मदद नहीं कर पाई। उन्होंने उस घटना का ज़िक्र किया जब वह सिर्फ हाथ मलती रह गई थीं, “उनके क्षेत्र में एक व्यक्ति को खांसी थी और उसमें टी बी के लक्षण थे। पर उसने अस्पताल जाने से इनकार कर दिया। मैंने एम्बुलेंस बुला कर उसकी मदद करना चाहा और इसके लिए महिला पुलिस स्टेशन में फ़ोन भी किया क्योंकि वहां का नंबर हम सभी को दिया गया था। प्रभारी महिला अधिकारी का नंबर भी हमें दिया गया था, पर कहीं से कोई जवाब नहीं आया। मैंने १०४ हेल्पलाइन पर भी फ़ोन लगाया पर न चेक-अप हुआ, न टेस्ट किये गए और न ही कोई डॉक्टर उसके इलाज के लिए आया”।

प्रसूता की देखभाल के मामले में नजदीकी सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में एक साल से कोई भी महिला डॉक्टर नहीं थी, इसलिए सभी स्त्रियों को बच्चे के जन्म के समय जिला अस्पताल ले जाना पड़ता था। एक मामले में शिल्पा एक गर्भवती महिला को अस्पताल ले गई पर उसके साथ रुक नहीं पाई, क्योंकि उन्हें वापस

अगले ही दिन कोविड ड्यूटी पर जाना था। बाद में पता चला कि महिला ने जनरल वार्ड में बच्चे को जन्म दिया और वह भी अन्य मरीजों के बीच। शिल्पा ने बताया कि डॉक्टर ने महिला की देखभाल नहीं की क्योंकि वह कन्टेनमेंट ज़ोन से आई थी और वे पहले उसका परीक्षण करना चाह रहे थे, “हम क्या कर सकते थे? सिर्फ इसलिए कि उसका टेस्ट नहीं हो पाया हम किसी महिला को अपना ख्याल खुद रखने के लिए ऐसे इमरजेंसी में छोड़ नहीं सकते”।

## — शिकायत के समाधान के लिए कोई जगह नहीं —

शिल्पा ने बताया कि अपर्याप्त परिवहन सुविधाओं और अपर्याप्त सुरक्षा उपकरण के बावजूद उन्हें सर्वे के लिए चिलचिलाती धूप में पैदल चलना पड़ता, पर इस बारे में किसी भी बात को अधिकारी तुरंत खारिज कर देते थे। आशा-कर्मियों को सर्वे पूरा करके अक्सर उसी दिन वार्ड ऑफिस में रिपोर्ट देनी पड़ती थी। पैसों के भुगतान में भी विलम्ब होता था, परिवार के कई लोगों की नौकरियां चली गई थीं और स्वास्थ्यकर्मी ही घर के अकेले कमाने वाले सदस्य बन गए थे। जब पैसे बढ़ाने के लिए निवेदन किया गया तो तल्ख जवाब और धमकियां मिलीं। शिल्पा बताती हैं: “जब मैंने भुगतान की बात उठाई तो मुझे कहा गया कि यदि मैं अपने काम से संतुष्ट नहीं तो मैं किसी और को यह काम सौंप सकती हूँ। उन्होंने कहा कि हम लिख कर दें कि हम विभाग से नाखुश हैं और हमारी बातचीत को रिकॉर्ड करने की भी धमकी दी। असल में वे कह रहे थे: ‘मांग मत करो, अपनी हालत के बारे में बातें मत करो। यदि तुम्हे दिक्कत हो रही है तो इस बारे में किसी और से न कहो, पर यदि तुम्हे काम दिया गया है तो उसे करना ही होगा”।

१२ वर्षों से आशा-कर्मियों का काम करने के बाद शिल्पा बताती हैं कि टीकाकरण में मदद करने के लिए बरसों पहले ७५ रुपये दिए जाते थे। उन्होंने बताया कि यदि वह कहीं और काम कर रही होतीं तो अपना हुनर बढ़ा सकती थीं, उन्हें और अधिक प्रोत्साहित किया जाता। अब वह महसूस करती हैं कि जीवन के १२ साल गँवा दिए क्योंकि उनके पास न पैसे हैं और न ही अपने कठिन परिश्रम के लिए कोई मान्यता मिली है।

एक व्यक्ति ने सर्वेक्षण के दौरान शिल्पा को बताया कि उसके पास पैसे भी नहीं हैं और दवाएं भी नहीं हैं। बाद में उसने आत्महत्या कर ली, इससे शिल्पा बहुत व्यथित हुई। शिल्पा ने बताया कि वह बिलकुल असहाय महसूस कर रही थीं, राज्य के स्वास्थ्य विभाग को कई वर्ष समर्पित करने के बाद भी जैसे कोई उनकी बात ही नहीं सुन रहा था। उन्होंने कहा, “लॉकडाउन, अंतहीन काम, पैसे की कमी की वजह से कभी-कभी मैं मानसिक रूप से भयंकर तनाव में होती हूँ। हम दूसरों के स्वास्थ्य के बारे में बातें कर रहे हैं पर हमारी खुद की हालत इतनी अनिश्चित है। हम बहुत अधिक मानसिक तनाव में हैं।”

# “यह कोई एक इंसान का काम नहीं”

## महामारी के दौरान सहयोग, समन्वय और संप्रेषण

हेमा छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले के दो गाँवों के लिए सहायक नर्स (ए एन एम) हैं जिनकी कुल आबादी २७४१ है। इस आबादी में अनुसूचित जाति, अन्य पिछड़ी जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग शामिल हैं। हेमा ५३ साल की है और १९८८ से ए एन एम के तौर पर काम कर रही हैं। वह अपने रिटायर्ड सैनिक पति और दो बच्चों के साथ रहती हैं। बेटा एक छोटा कारोबार संभालता है और बेटी रेड क्रॉस के साथ काम करती है और साथ ही कांकेर के एक कॉलेज में स्नातकोत्तर की पढ़ाई भी कर रही है। हेमा ने राज्य के कई जिलों में काम किया है पर अपना कांकेर ब्लॉक उन्हें भाता है। उन्होंने बताया: “यहाँ लोग सरल हैं और मुझे उनके साथ काम करना पसंद है। दूसरे जिलों में मुझे शिक्षित लोगों को समझाने में दिक्कत होती है। वे चीज़ों को जटिल बना डालते हैं।”

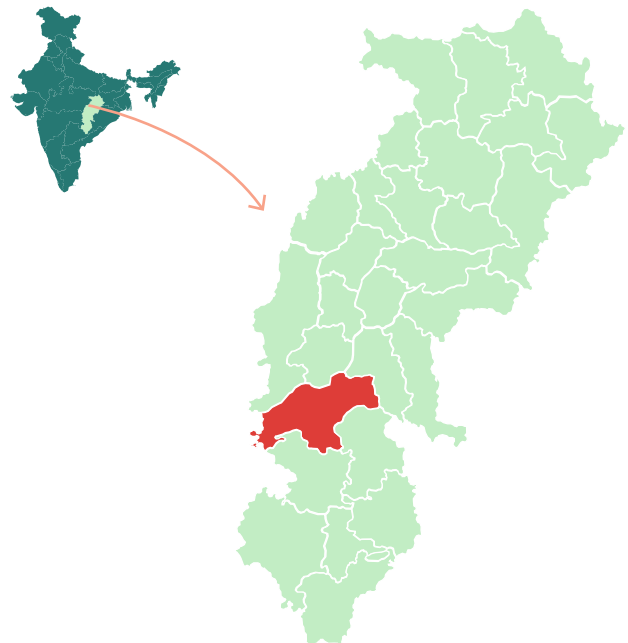
### कांकेर जिला

जनसंख्या: ७४८,५९३ (२०११)

राज्य: छत्तीसगढ़

भाषा: छत्तीसगढ़ी, हिंदी

मुख्यालय: कांकेर



## सहयोग और संप्रेषण: भयों को दूर करना

हेमा को सबसे पहले कोविड-१९ के बारे में मीडिया से और इसके बाद स्वास्थ्य विभाग की एक बैठक के ज़रिये पता चला। शुरू में उन्हें स्थिति बहुत ही अव्यवस्थित लगी क्योंकि किसी को भी इस वायरस के बारे में सटीक जानकारी नहीं थी। स्वास्थ्य विभाग द्वारा दिए गये प्रशिक्षण के बाद उन्हें सही जानकारी मिली की यह वायरस वुहान में जन्मा है और तेज़ी से फैला है। उन्होंने स्वीकार किया कि वायरस के बारे में जानकार वह काफी डर गयी थी, खुद के लिए भी और परिवार के लिए भी। लेकिन स्वास्थ्य कर्मियों होने के नाते उन्होंने यह महसूस किया कि मेरी ज़िम्मेदारी दूसरों के जीवन की रक्षा करना है और अपने भय और शंकाओं से बाहर निकलना है। “हम काफी डर गये थे क्योंकि यह सब अचानक हो गया था: कोरोना वायरस ने हमें तैयारी करने और सोचने का बिलकुल भी वक़्त नहीं दिया।”

हालाँकि परिवार ने उन्हें इस काम में पूरा सहयोग दिया है लेकिन शुरुआत में उन्हें और उनकी बेटी को काम के लिए बाहर जाने से मन किया गया। बाद में उन्होंने बेटे को यह कहकर भरोसा दिलाया: “हम सभी वैसे भी मर ही जायेंगे, लेकिन मरने से पहले इंसानियत और अपने समुदाय के लिए कुछ अच्छा काम क्यों न कर जाएँ। लोगों की सेवा करना हमारा काम है और हम पीछे नहीं हट सकते हैं।”

हेमा को समुदाय में कुछ खास प्रोत्साहन नहीं मिला और काफी समस्याओं का सामना करना पड़ा। गाँव वालों का विश्वास था कि दुसरे राज्यों से आने वाले प्रवासी मजदूर गाँव में संक्रमण ला रहे हैं और वे गाँव के रास्तों को रोकने लगे जिससे उन्हें भी आने जाने में परेशानी होने लगी। वे उन्हें भी गाँव में घुसने नहीं दे रहे। उन्होंने हतोत्साहित हुए बिना गाँव के लोगो को समझाया और लोगों के साथ बैठकें की ताकि लोगों का भय और अज्ञान दूर हो सके। इसके साथ ही उन्होंने गाँव वालों को वायरस के बारे में बताया और समझाया की सड़कें बंद करने से गाँव वालों के लिए ही आपात स्थिति में समस्या पैदा होगी।

हेमा ने तुरंत यह समझ लिया कि कोविड-१९ के बारे में मीडिया रिपोर्ट से गाँव वालों के भीतर एक भय व्याप्त हो गया है। वह समझ गयी थी कि उन्हें समुदाय के साथ सहयोग करना ही होगा। सजगता के लिए एक प्रबल अभियान चलाने की ज़रूरत थी जिससे व्यवस्था सही हो सके और यह काम वह अकेले नहीं कर सकती थी। वह समझ गयी की “इस काम के लिए एक से अधिक लोग चाहिए”। इसके लिए उन्होंने एक टीम बनायीं जिसमे उनकी बेटी, आंगनवाडी कार्यकर्ता, मितानिन (ग्राम स्वास्थ्यकर्मी), सरपंच और स्थानीय अगुआ शामिल किये गये। उन्होंने ब्लॉक के एक युवा संगठन को भी शामिल किया जिसकी ज़िम्मेदारी महामारी के बारे में जानकारी देना और भय और अफवाहों से लोगो को दूर रखना था। मेरे पास सिर्फ कोविड-१९ के बारे में जानकारी थी इसका इलाज़ नहीं। यह महत्वपूर्ण था की लोगों को पता चले कि एहतियात बरतना ही एकमात्र उपाय था। मैंने टीम को निर्देश दिए कि वे गाँव के हर घर में जाएँ और जागरूकता फैलाएं। लोगों को बताएं कि वे दूरी बनाये रखें, बार बार साबुन से हाथ धोते रहें और बाहर जाते समय मास्क पहनें।”

उन्होंने गाँव के दुकानदारों से दुकान के बाहर एक बाल्टी पानी और साबुन रखने का अनुरोध किया, गाँव वालों को इक्कठा किया और महामारी के नियमों को समझाने के लिए उनके साथ एक मीटिंग की। दुकानदारों से कहा गया कि वे ग्राहकों से बार बार कहें की वे दुकान में आते समय अपने हाथ धोएं। हैंडपंप से पानी लेने आने वाली महिलाओं से एक दुसरे से दूरी बनाये रखने और पानी लेने के लिए कतार बना कर खड़े होने को कहा गया, बच्चे और बड़ी उम्र के लोगों की विशेष देखभाल पर विशेष जोर दिया गया क्योंकि वायरस उन्हें अपनी चपेट में ज्यादा ले सकता है।

अन्य स्वास्थ्य कर्मियों और स्थानीय नेताओं की मदद से हेमा ने वापस लौट रहे प्रवासी मजदूरों का क्वारंटाइन सेंटर में रुकना सुनिश्चित किया। शुरुआत में लोग क्वारंटाइन सेंटर में रुकने से घबराते थे, “मैंने उन्हें समझाया कि उनकी वजह से उनके घर वाले और गाँव वालों को अधिक खतरा हो सकता है। इसके बाद ही वे राज़ी हुए।”

उन्होंने बताया “पहले तो लोगों के मन में बहुत भय था। समुदाय और मैं- दोनों ही बहुत डरे हुए थे। लेकिन जैसा कि विज्ञापन में कहा जाता है: डर के आगे जीत है”—हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ। शुरुआत में कोविड-१९ का कोई मामला नहीं था पर हमे बहुत डर लगता था। अब पॉजिटिव मामले बढ़ गये हैं पर स्थिति शांत है। हम सजग और तैयार हैं। हमारे प्रयासों से लोग सजग हो गये हैं।”

## स्वास्थ्य-व्यवस्था में समन्वित प्रयास

हेमा और उनके सहकर्मियों को बाहर काम करने के लिए प्रति कर्मि के हिसाब से दस मास्क और सैनीटाईजर की तीन बोतलें दी गयीं। टेस्टिंग दल में जो थे उन्हें पीपीई किट्स भी दिए। उन्होंने बताया कि टेस्टिंग और मरीजों का पता लगाने (ट्रेसिंग) के लिए समन्वित प्रयास हो रहे थे। गाँव में वापस आने वाले लोगों को क्वारंटाइन करते समय हेमा और ब्लॉक के उनके सहकर्मियों ने ग्राम प्रतिनिधियों ने व्यवस्थित तरीके से विस्तृत जानकारी जमा की और उन्हें व्हाट्सएप्प के जरिये स्वास्थ्य विभाग के साथ साझा किया। इसके बाद एक टीम टेस्टिंग और नमूने जमा करने के लिए आती थी। हेमा को एक थर्मल टेस्टिंग किट भी दी गयी थी और अब वह शरीर का तापमान भी देख लेती थी।

उन्होंने जोर देकर कहा कि उन्हें ब्लॉक अधिकारियों के सहयोग से उन्हें मदद मिली। वह अक्सर सीधे ब्लॉक अधिकारियों से बात करती थी और वे उनकी बातों पर गौर करते थे। “चूँकि वे हमारी बात सुनते हैं इसलिए हम काम कर पाते हैं। यदि हमें नज़रंदाज़ किया जाता तो काम करना मुश्किल हो जाता।” हेमा ने बताया कि नए नियमों के साथ सामान्य स्वास्थ्य व्यवस्थाएँ कैसे संचालित होती थी- ग्राम स्वास्थ्य और पोषण दिवस, टीकाकरण दिवस मनाते समय और प्रसूता की जांच वगैरह करते समय वह सोशल डिस्टेंसिंग के नियमों का पालन करती थी। बच्चे के जन्म को लेकर उनके क्षेत्र में किसी तरह की असुविधा नहीं हुई है क्योंकि सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र उनके गाँव से बस पांच किमी दूर है और वहाँ पहुंचना आसान है। परिवार नियोजन और अन्य बाह्य रोगी सेवाओं के लिए उप स्वास्थ्य केंद्र पूरी तरह सक्रिय थे। औसतन वे दस से ग्यारह मरीजों को रोज़ देखते थे जिन्हें पेचिश, बुखार और खांसी की शिकायत रहती थी। कोविड-१९ से बाहर के रोगी प्रभावित नहीं हुए क्योंकि ओपीडी हमेशा से ग्रीन जोन में ही रहा है। हालाँकि लोग भयभीत थे, फिर भी मामूली बिमारियों के लिए वे उप स्वास्थ्य केंद्र में इलाज़ के लिए आते थे।

“ऐसे संकट की स्थिति में ब्लॉक स्तर के सरकारी विभाग और गाँव के समुदाय एक दुसरे के हाथ थामे हुए हैं। हम साथ मिलकर काम कर रहे हैं और कोविड से लड़ रहे हैं। गाँव के प्रतिनिधि और स्वास्थ्य कर्मियों के अलग अलग कैडर सभी साथ मिलकर काम कर रहे हैं, उन्होंने बताया।”

इस सब के बावजूद हेमा ने भुगतान को लेकर अपना गुस्सा और असंतोष ज़ाहिर किया। कोविड ड्यूटी के लिए अतिरिक्त भुगतान सम्बन्धी कोई सूचना उन्हें नहीं मिली है, स्वास्थ्य कर्मियों को पचास लाख रुपये के बीमे के आश्वासन के बारे में भी उन्हें कोई सूचना नहीं है। “एक तरफ तो हमारे ऊपर फूलों की पंखुड़ियाँ बरसाई गयीं, लोग तालियाँ बजा रहे थे और वहीं दूसरी तरफ सरकार हमारी तनख्वाह काट रही थी। मैं इस देश के प्रति समर्पित हूँ, पर ऐसे संकट के समय में तनख्वाह काट लेना, और बढ़ोत्तरी में विलम्ब करना उचित नहीं है। जब हम अपनी जान को जोखिम में डाल रहे हैं तो आप लोगों से तालियाँ बजवा रहे हैं, वे फूल बरसा रहे हैं, तनख्वाह काट ले रहे हैं। यह अपमानजनक है। यह न्याय नहीं है।



# “मुझे लगता है मैं मल्टीपर्स (सर्वांगीण) हूँ”

## काम और उसकी जगह बदलते रहना

पाखा अरुणचल प्रदेश के निचले जिले सुबनसिरी में ए एन एम के तौर पर विगत बारह वर्षों से काम कर रही हैं। २०१५ तक वह कॉन्ट्रैक्ट पर काम करती थीं, बाद में नियमित कर दिया गया। कुछ वर्षों तक उन्होंने स्वास्थ्य उप-केन्द्रों पर काम किया और बाद में उन्हें जनरल हॉस्पिटल की अतिरिक्त जिम्मेदारी दी गई। वह दो ब्लॉक्स में काम करती हैं जहाँ आमतौर पर अपातानी और मिशिंग नाम के स्थानीय समुदायों के लोग बसते हैं। अपातानी समुदाय पानी खेती यानि नम भूमि पर की जानेवाली खेती में लगा हुआ है जबकि मिशिंग सीढ़ीनुमा खेतों पर और अलग अलग जगहों पर धान उगाते हैं। अपातानी लोगों की आबादी सघन है, सभी घर पास-पास बने हुए हैं, लेकिन मिशिंग समुदाय के घर फैले हुए हैं और ब्लाक मुख्यालय से दूर हैं।

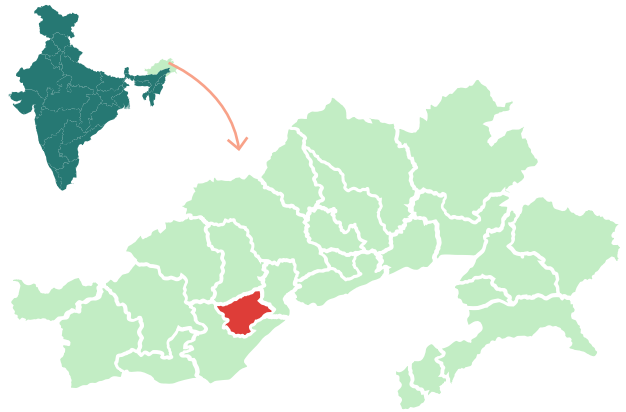
### निचला सुबनसिरी जिला

जनसंख्या: ८२८३९ (२०११)

राज्य: अरुणाचल प्रदेश

भाषा: अपतानी, न्याशी/निशी

मुख्यालय: जीरो



## अस्पताल और उप केन्द्रों के बीच चक्कर

जनरल हॉस्पिटल में पाखा स्त्री एवं प्रसूति विभाग में नर्स और मिडवाइफ का काम करती थीं और ब्लड बैंक में भी काम करती थीं। अपने उप-केंद्र में वह ए एन एम के तौर पर भी काम करती थीं। वहां पर वह शिशु जन्मपूर्व की देखभाल, परिवार नियोजन संबंधी सेवाओं एवं टीकाकरण संबंधी सेवाओं से जुड़ी थीं। इन दोनों जिम्मेदारियों के अलावा उन्हें कोविड-१९ की जिम्मेदारियों से भी जूझना पड़ता था। अलग-अलग तरह के काम करते उन्हें लगता था कि मैं एक ‘मल्टीपर्स कर्मी’ या हरफनमौला हूँ। वह और अन्य ए एन एम कार्यकर्ता जिन्हें जी एन एम की तरह भी काम करना पड़ता है, कई बार संबद्ध अधिकारियों को अपनी दिक्कतें बता चुके हैं, उनसे अनुरोध किया है कि उन्हें सिर्फ उप-केंद्र में ए एन एम के तौर पर नियुक्त किया जाए। उनकी बातें सुनी-समझी जाती हैं पर पाखा और उसके सहकर्मियों को बताया जाता है कि जी एन एम कर्मियों का अभाव है। पाखा ने एक घटना का जिक्र किया जिसमें काम करना बहुत ही मुश्किल हो

रहा था, “मैं पहले ही अस्पताल पहुँच चुकी थी और प्रसूति और स्त्री रोग विभाग में ड्यूटी शुरू कर दी थी। तभी मुझे बताया गया कि महामारी के लिए सर्वे ड्यूटी पर जाना है। मैंने मैट्रन से कहा कि मुझे अस्पताल में ड्यूटी दी गई है या फिर सर्वेक्षण के लिए। मैं वार्ड छोड़ कर कैसे जा सकती हूँ? उस दिन मैंने अपनी वार्ड ड्यूटी की, लंच के लिए घर लौटी और फिर सर्वेक्षण के लिए बाहर निकली। अगले दिन से मैं सीधे सर्वेक्षण ड्यूटी के लिए गई”।

## कोविड-१९ से जुड़े काम

महामारी के शुरुआती दिनों में सुबनसिरी जिला बीमारी से प्रभावित नहीं था और पाखा अस्पताल की ड्यूटी पर ही लगी रहती थीं। अगस्त और सितम्बर में जिले में पहले कुछ मामले आये। पाखा ने बताया कि यह शायद इसलिए था कि क्योंकि लोग राजधानी इटानगर से आ रहे थे जहाँ संक्रमण की आशंका ज्यादा थी। पाखा ने कहा कि जब बाकी देश के कई हिस्से घर लौटने वाले प्रवासियों की समस्या से जूझ रहे थे, उनके इलाके में लोग बाहर से आये ही नहीं और इसलिए संक्रमण के कारण होने वाली मृत्यु दर कम रही।

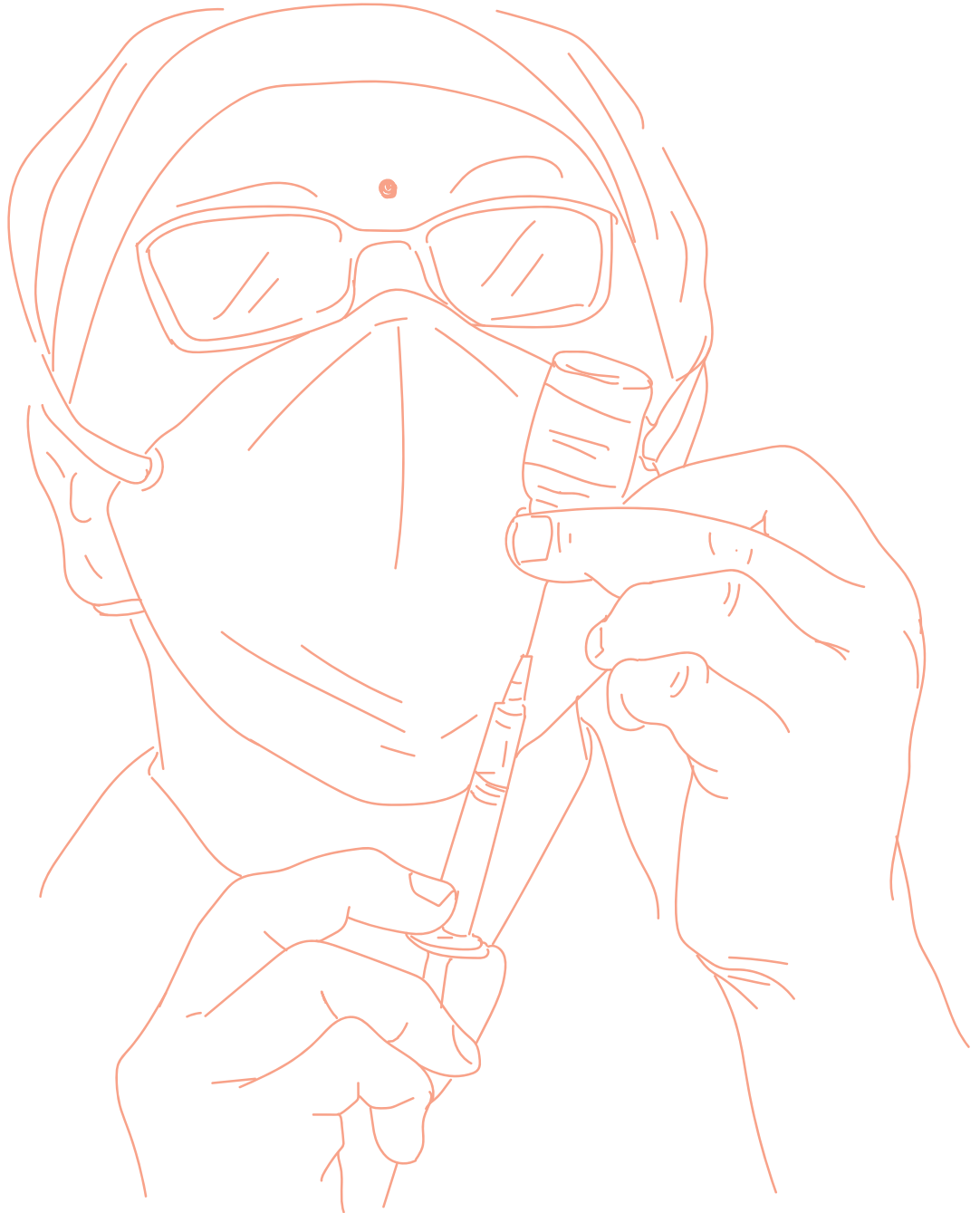
महामारी शुरू होने पर अस्पताल-कर्मियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। उस दौरान पाखा मातृत्व अवकाश पर थीं और वह उसमें शामिल नहीं हो पाई, उनके सहकर्मियों ने सलाह दी कि वह इन्टरनेट पर जानकारी बटोरें और हाथ धोने, भौतिक दूरी, मास्क पहनने एवं लक्षण दिखने पर किये जाने वाले उपायों पर जोर दें। व्यक्तिगत स्तर पर एहतियाती उपायों का पाखा के लिए खास महत्व था क्योंकि उनका छोटा बच्चा था और उन्हें उसकी फिक्र थी। कोविड ड्यूटी से घर लौटने पर वे ठीक से नहाना और अपने कपड़े धोने सुनिश्चित करती हैं तब बच्चे के पास जाती हैं, “घर में छोटा बच्चा हो तो पूरी सतर्कता बरतनी पड़ती है; और कोई उपाय ही नहीं”।

जब सितम्बर में कोविड-१९ के कुछ मामले सामने आये तो उन्हें कन्टेनमेंट ज़ोन में कोविड-१९ सर्वे की ड्यूटी दी गई। देश के अन्य हिस्सों में स्वास्थ्यकर्मियों को मास्क, ग्लव्स और सैनिटाइज़र भले ही न मिले हों, पर पाखा को सर्वेक्षण पर जाते समय मास्क, ग्लव्स और सैनिटाइज़र मिलते थे, “सर्वेक्षण के लिए हम चार लोग कन्टेनमेंट ज़ोन में गए- आशा, ए एन एम, एक महिला सहायिका और एक डॉक्टर। हम लक्षणों की जांच करते थे, परीक्षण करते थे और प्राथमिक और अप्रधान संपर्कों का पता करते थे।” उन्होंने बताया उनके साथ काम करनेवाली पांच आशा- कर्मी बहुत अच्छी, उत्साही और सहयोग करने वाली हैं।

सर्वेक्षण करना और कोविड के नियमों को समझाना आसान काम नहीं था। सर्वेक्षण के दौरान कुछ लोग सहयोग करते थे, कई नहीं भी करते थे। वे उन्हें साफ़ साफ़ खारिज कर देते—“यह कोरोना बिलकुल बकवास है, हमें आप परेशान न करें”। पाखा ने बताया कि समुदाय की इस तरह की प्रतिक्रियाओं से पूरे धैर्य से निपटना पड़ता था, “हम उन्हें याद दिलाते थे कि यदि उन्हें अन्य बीमारियाँ भी हों तो कोविड-१९ उनके बच्चों, संबंधियों और पारिवारिक सदस्यों के लिए खतरनाक हो सकता है। अपने और अपने परिवार के हित में उन्हें हमारी बात गौर से सुननी चाहिए।”

## ए न एम होना

पाखा ने बताया कि वह ए एन एम ही रहना चाहती हैं, अलग-अलग भूमिकाओं में काम नहीं करना चाहतीं, “मैं जच्चा-बच्चा से जुड़े काम करना चाहती हूँ---गर्भनिरोधक संबंधी सलाह, जन्म से पूर्व की देखभाल, टीकाकरण वगैरह। ए एन एम के तौर पर हम समुदायों में जनगणना करते हैं---पूरी जनसँख्या, परिवार नियोजन के लिए उपयुक्त दंपति, गर्भधारण का पंजीकरण, जन्म से पूर्व की चिकित्सकीय जांच, टीकाकरण, आशा-कर्मियों के साथ मिलकर सूक्ष्म योजना बनाना एवं उन्हें अधिकारियों के साथ साझा करना”। उन्हें उम्मीद है कि जी एन एम की नियुक्ति से बड़े अधिकारियों के वादे जल्दी ही पूरे होंगे और वह ए एन एम के तौर पर काम करती रहेंगी। उनका कहना है: “मैं चाहती हूँ कि किसी स्वास्थ्य उप-केंद्र से जुडी रहूँ। इससे मैं एकाग्र होकर काम कर पाऊँगी और लगातार जी एन एम और ए एन एम की भूमिकाओं के बीच डोलना नहीं पड़ेगा”।



# “हम अपना काम करते हैं पर जब तक लोग इलाज न करवाना चाहें, इसका कोई अर्थ नहीं”

## लोगों को भरोसा दिलाने की चुनौती

सूचना उत्तर प्रदेश के जालौन जिले में आशा-कर्मि हैं। उन्होंने दसवीं तक पढाई की है और अपने स्कूल शिक्षक पति, पांच बच्चों एवं सास-ससुर के साथ रहती हैं। उनके पति ने शिक्षा में डिग्री ली है। महामारी के समय से ही सूचना को अपना मासिक मानदेय नहीं मिला पर वह पहले से ज्यादा समय तक काम किये जा रही हैं। उनके पति उनके इस काम से खुश नहीं क्योंकि उनकी आय काफी कम है। बुनियादी स्वास्थ्य और परिवहन सेवाओं के आंशिक रूप से स्थगित होने के कारण उन्हें समय पर स्वास्थ्य सुविधाएँ देने और समुदाय में अफवाहों को दूर करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

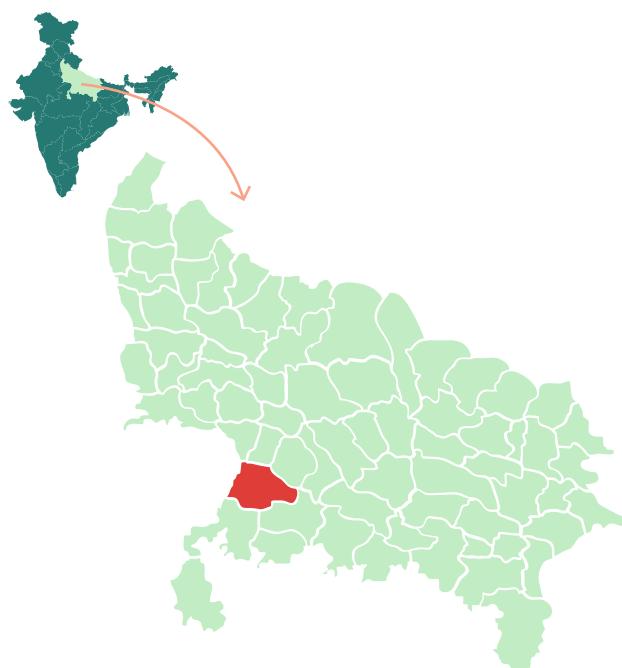
### जालौन जिला

जनसंख्या: १,६७०,७१८ (२०११)

राज्य: उत्तर प्रदेश

भाषा: हिंदी, उर्दू

मुख्यालय: ओराई



## आशा-कर्मियों के बारे में संदेह

सूचना ने बताया कि लोगों को आशा-कर्मियों पर संदेह होता है। वह कहती है कि ऐसा इसलिए है क्योंकि आशा-कर्मि सर्वेक्षण के दौरान लोगों के नाम के साथ ही महामारी के लक्षण भी लिखते हैं और अधिक जोखिम वाले लोगों को चिन्हित भी करते हैं। आशा-कर्मि सर्वेक्षण के लिए हर रोज़ गाँव के हर घर में जाती है साथ ही टेस्टिंग वाली जगहों पर जाती है एवं जहाँ जरूरत पड़े वहाँ क्वारंटाइन के लिए लोगों को अपने साथ भी रखती हैं। पर इस तरह के लगातार होते सर्वेक्षण से आशा के खिलाफ वैमनस्य बढ़ा है, लोग अपने लक्षण तक छिपा लेते हैं।

“मुझे कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लोगों को डर लगता है, और वे पूछते रहते हैं कि हम उनका नाम क्यों लिख रहे हैं और इससे कोई समस्या तो नहीं होगी। वे अपना नाम बताने से इनकार कर देते हैं और हमें कई बार उनके पास जाना पड़ता है। वे कहते हैं: ‘मेरा नाम न दें। हमारा परीक्षण न कराएँ।’ लोग अपने बच्चों के लिए सामान्य टीकाकरण के लिए भी इंकार कर देते हैं। वे सोचते हैं कि इससे उन्हें बुखार हो जाएगा, उन्हें दर्द होगा, या फिर बच्चा बीमार पड़ जाएगा। हमें कई बार समझाना पड़ता है कि उन्हें दर्द नहीं होगा। मैं उन्हें आश्वासन देती हूँ कि बुखार होने की स्थिति में ए एन एम बच्चे को दवा भी देगी”।

## समय पर स्वास्थ्य सेवाएं

सूचना के इलाके में कोविड पॉजिटिव के अधिक मामले नहीं हैं और गंभीर बीमारियों के मामले भी बहुत कम हैं। हाँ छोटी-मोटी बीमारियाँ नियमित रूप से होती रहती हैं और उनका ख्याल रखना पड़ता है। राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन के कारण परिवहन ठप पड़ गया, निजी क्लिनिक बंद हो गए, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र वैसे ही खस्ताहाल थे; निजी चिकित्सालय हैं नहीं, लोगों को सामान्य ज्वर और जख्मों के इलाज तक में बड़ी दिक्कतें हुईं। एम्बुलेंस सिर्फ गर्भवती स्त्रियों को आपात स्थिति में ही उपलब्ध हो पाती थीं। जिला अस्पतालों में लंबी कतारें न लगे इसलिए लोग अक्सर बीमारी को अनदेखा कर देते थे या फिर अपने तरीके से ही उसका इलाज करते थे। “वे कहते हैं, ‘कौन इतनी दूर अस्पताल जाकर खुद का परीक्षण करवाएगा?’ अस्पताल पहुँचने के लिए उन्हें गाँव और नदियाँ पार करनी पड़ती। सबसे करीब का अस्पताल पांच कि मी दूर है। यहाँ से परिवहन का कोई साधन नहीं और इसलिए लोगों को पैदल ही जाना पड़ता है और लंबी कतार का ख्याल हिम्मत तोड़ देता है। वे सोचते हैं कि अस्पताल जाना बेमतलब है क्योंकि वहाँ उन्हें संक्रमण का खतरा दिखाई देता है। हम अपना रोज़मर्रा का काम करते हैं, पर जब तक लोग इलाज करवाना न चाहें, इसका कोई अर्थ नहीं”।

सूचना महामारी के दौरान अपना रोज़मर्रा का काम करने की पूरी कोशिश करती हैं, ड्यूटी के दौरान अपने नाक और मुँह पर साफ़ कपड़ा लपेटे रखती हैं; वह रोज़ गाँव के घरों में जाती हैं और सभी को डेंगू के खतरे के बारे में भी बताती हैं क्योंकि मानसून का मौसम आ चुका है। वह लोगों को समझाती हैं कि वे पीने के पानी को साफ़ रखें, मच्छरदानी का उपयोग करें और बीमारी के लक्षणों पर ध्यान रखें। वह पूरी कोशिश करती हैं कि मातृत्व स्वास्थ्य सेवा, अस्पताल में होने वाली डिलीवरी पर कोई असर न होने पाए। इसके अलावा कोविड-१९ संबंधी एहतियात बरतने, दूरी बना कर रहने और हाथ धोने के महत्त्व के बारे में वह बार-बार समझाती हैं। यह सब कुछ स्वास्थ्य विभाग से महामारी के बारे में मिलने वाले निर्देशों के आधार पर किया जाता है।



## ‘हम काम करते हैं पर कम आर्थिक प्रोत्साहन चिंता की बात है’

सूचना ने बताया कि घर गृहस्थी के काम के साथ आशा का काम करना उनके लिए मुश्किल नहीं पर आर्थिक रूप से प्रोत्साहन न मिलना जरूर परेशान करता है। जब मानदेय नहीं मिलता तो समस्या होती है और मन हतोत्साहित होता है, “मैं सुबह ३ बजे उठती हूँ, ४ बजे खाना बनाना शुरू करती हूँ, और फिर फील्ड के काम के लिए ८ बजे निकल जाती हूँ। कभी-कभी मैं देर में जाती हूँ और शाम ४ बजे तक घर लौटती हूँ। काम से मुझे दिक्कत नहीं पर आर्थिक प्रोत्साहन के रूप में जो मिलता है वह बहुत ही कम है- २००० रुपये प्रति माह मिलते हैं।” उन्होंने बताया कि गाँव की अन्य आशा-कर्मियों को भी यही फिक्र है।



**“मैं असहाय हूँ, मैं कुछ नहीं कर सकती। एक तरफ लोगों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिल रही हैं, और हमें आर्थिक प्रोत्साहन ही नहीं मिल रहा”**

**थकान, जोखिम, खतरे और अविश्वास के साथ काम करना**

२० साल की आशा-कर्मी अजिया बिहार के किशनगंज जिले में भारत-नेपाल सीमा पर करीब १३०० लोगों की मुस्लिम बहुल आबादी के साथ काम करती हैं। उन्होंने नेपाल के एक निजी स्कूल से दसवीं की पढाई पूरी की और २०१८ में आशा-कर्मी के तौर पर काम करने लगी। पंद्रह साल की उम्र में उनका विवाह हो गया था, दो बच्चे हैं। लॉक डाउन के दौरान अजिया नेपाल से आने वाले प्रवासियों पर नजर रखने के लिए सीमा पर नियुक्त की गई थीं। अपने गाँव में लोगों को सामान्य सेवाएं देने और उनकी निगरानी के अलावा उसने यह काम भी हाथ में ले लिया। महामारी के दौरान के अपने अनुभवों को याद करते फ्रंटलाइन के कर्मियों के जोखिम को रेखांकित करती वह समुदाय के अविश्वास और लॉकडाउन के दौरान भुगतान में देरी की भी चर्चा करती हैं।

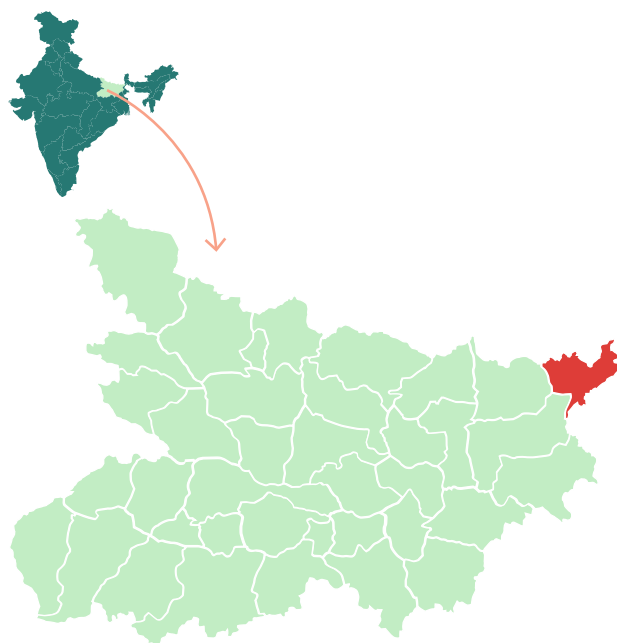
किशनगंज जिला

जनसंख्या: १,६९०,९४८ (२०११)

राज्य: बिहार

भाषा: मैथिली, हिंदी

मुख्यालय: किशनगंज



## सीमा पर काम करना

अजिया को कोविड-१९ के बारे में तब पता चला जब भारत-नेपाल सीमा पर ब्लाक अधिकारियों ने आशा-कर्मियों की एक बैठक बुलाई। आशा-कर्मियों से अपेक्षा थी कि वे बिहार में प्रवेश करने वाले प्रवासियों का परीक्षण करें और जरूरत पड़ने पर उन्हें रोकें भी। ड्यूटी १५ दिनों के लिए थी और आशा-कर्मियों को दिन में दो बार कुछ घंटों के लिए जाना पड़ता था। पर परिवहन के अभाव में अजिया को रोज़ दो घंटे पैदल चलना पड़ता था, क्योंकि गाँव से सीमा तक पहुँचने में एक घंटा लगता था। दो-तीन दिन उन्हें सीमा पर लंच दिया गया पर उसके बाद उसे लंच के लिए घर जाना और फिर वापस ड्यूटी के लिए आना पड़ता।

शुरुआत में आशा-कर्मियों के पास थर्मल टेस्टिंग उपकरण नहीं थे, पर जब वे उपलब्ध भी हुए तो बस कुछ घंटों के लिए ही दिए जाते थे। उतने सीमित समय में वे जिसकी भी जांच कर पाते थे, कर लेते थे, “टेस्टिंग मशीन की मदद से हमने १५ दिनों में करीब एक हज़ार लोगों का तापमान देखा और दर्ज किया है हालाँकि सीमा पर कई प्रवासी हैं। जिन लोगों ने हमें टेस्टिंग मशीन दी उसे दो या तीन घंटों में ही वापस ले लिया। यदि मशीन ज्यादा समय के लिए उपलब्ध होती तो हमने ५००० से अधिक लोगों का परीक्षण किया होता।”

प्रवासियों के साथ करीब से काम करना अजिया और अन्य आशा-कर्मियों को चिंतित कर रहा था। पास के गाँवों की दो आशा-कर्मियों कोविड पॉजिटिव हो चुकी थीं। गाँव के कुछ अन्य लोग भी कोरोना पॉजिटिव हुए थे। १३ अगस्त को आशा दिवस पर सभी आशा-कर्मियों का कोविड-१९ के लिए परीक्षण होना था, पर किसी का भी परीक्षण नहीं हुआ।

## समुदाय का भरोसा न मिलना

भारत नेपाल सीमा पर अपने काम के अलावा अजिया अपने समुदाय में घर-घर घूम कर सर्वेक्षण करने के काम में भी शामिल थीं। उन्होंने गाँव लौटने वाले प्रवासी मजदूरों की परीक्षण की रिपोर्ट का ब्योरा भी रखा। इस काम में उन्हें लोगों पर निगरानी रखनी पड़ती थी और इस वजह से लोगों की झल्लाहट भी झेलनी पड़ती थी, वे अजिया को संदेह और अविश्वास से देखते थे।

“गाँव वाले सहयोग नहीं करते थे। जब मैं घरों में जाती थी तो मुझे दूर से ही भगा देते थे और कहते थे कि यह सब बकवास है, घर में कोई रोग नहीं है। यह सब राजनेताओं का नाटक है हमें परेशान करने के लिए, और आप लोग नेताओं के साथ मिले हुए हैं।” वे इलाके में रोग की उपस्थिति को नकारते थे। कई लोग बताते ही नहीं थे कि वे प्रवासी हैं जो गाँव लौट कर आये हैं। जब मैंने पता किया और सर्वेक्षण के लिए उनके घर गई तो प्रवासी मेरे घर आये और गुस्सा जताया क्योंकि मैंने उनकी जानकारीयों इकट्ठा की थीं। उन्होंने मेरे साथ झगड़ा किया।”

टीकाकरण जैसी सामान्य सेवा पर भी इस अविश्वास का असर पड़ा। लोगों ने अजिया पर आरोप लगाया कि वह उनके बच्चों को खतरे में डाल रही हैं।

“जब मैं टीकाकरण अभियान पर जाती हूँ, तो लोग कहते हैं कि मैं उनके बच्चे को ज़हर देकर मार दूंगी। मैं उनको यह कह कर समझाती हूँ कि उनके बच्चों के मरने से पहले मैं खुद को ही मार डालूंगी। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में आकर डॉक्टर भी लोगों को समझाते हैं। लोगों का भरोसा जीतने में काफी समय लग जाता है”।

## विलंबित देखभाल, विलंबित भुगतान टीकाकरण

राष्ट्रीय लॉकडाउन शुरू होने पर अजिया के इलाके में स्वास्थ्य सेवाएं थम गईं; इसके अलावा उन्हें बच्चों की अस्पताल में डिलीवरी और टीकाकरण के लिए कोई आर्थिक प्रोत्साहन भी नहीं मिला। अप्रैल और मई में टीकाकरण नहीं हुआ और गर्भवती महिलाओं का शिशुजन्म से पूर्व परीक्षण भी स्थगित हो गया था। अजिया बताती हैं कि लॉकडाउन और महामारी के दौरान जच्चा-बच्चा की देखभाल प्रभावित हुई: “दूसरे ब्लाक में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र पर सिर्फ बच्चों की डिलीवरी करवाई जाती थी। संक्रमण के भय से महिलाओं को बच्चे के जन्म के लिए अस्पताल जाने से डर लगता था। एक गाँव में एक शिशु की जन्म के ३० दिन बाद सर्दी और बुखार से मृत्यु हो गई। उसकी मां उसके लक्षण नहीं पहचान पाई थी। और चूंकि उन दिनों स्वास्थ्य परीक्षण नहीं हो पा रहे थे बीमारी का पता नहीं चल पाया। मां के लिए भी अस्पताल समय से पहुँच पाना संभव नहीं हो पाया। निरोध जैसी परिवार नियोजन संबंधी वस्तुएं और टीकाकरण की जानकारी के प्रसार पर भी असर पड़ा। ऐसा इसलिए भी हुआ क्योंकि हम महिलाओं को उनके घर पर अलग से और ग्राम स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस पर भी नहीं मिल पा रहे थे।”

महामारी से पहले, अजिया करीब ४००० से ५००० रुपये तक कमा लेती थीं पर लॉकडाउन के बाद और कुछ गतिविधियों के फिर से शुरू हो जाने के बावजूद उन्हें सिर्फ २००० रुपये और अलग से कुछ प्रोत्साहन दिए जाते थे। अप्रैल से जुलाई तक कोई भुगतान नहीं किया गया हालाँकि ड्यूटी पर रोज़ जाना पड़ता था। अगस्त में आशा यूनियन ने बकाया राशि के भुगतान के लिए हड़ताल पर जाने का फैसला किया। भुगतान चार या पांच महीनों से रुका हुआ था। सीमा पर काम के लिए भुगतान और महामारी के दौरान काम के बोझ को कम करना भी उनकी मांगों में शामिल था।

गाँव वालों का वैमनस्य और स्वास्थ्य विभाग से कोई खास सहयोग न मिलना अजिया को थका डालता था। ऊपर से आशा-कर्मियों को भुगतान भी नहीं किया जा रहा था जो ज़ख्म पर नमक छिड़कने जैसा था। “मैं असहाय हूँ। मैं कुछ भी नहीं कर पा रही। लोगों को आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएं भी नहीं मिल रही और दूसरी तरफ, हमें आर्थिक प्रोत्साहन भी नहीं मिल रहा”।

# “यदि हमें पीपीई किट्स दिए गए होते, तो हमारा काम काफी सुरक्षित हो जाता”

## जोखिम, प्रवासी और काम के बोझ का संतुलन साधना

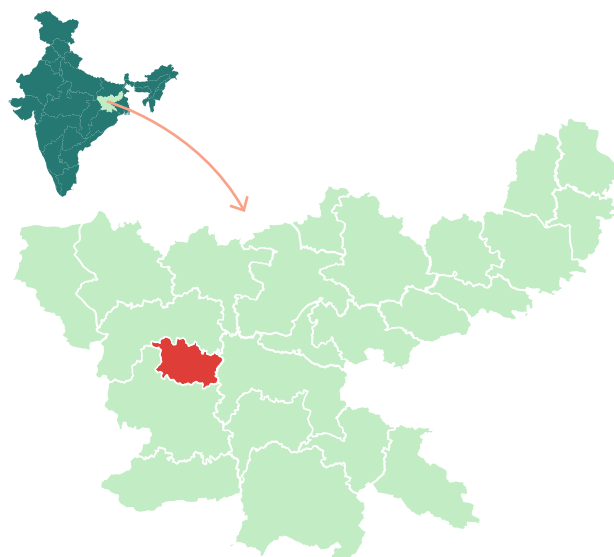
झारखण्ड के लोहरदगा जिले में कविता एक उप केंद्र में २००५ से ए एन एम के तौर पर काम कर रही हैं। उन्होंने नौ वर्ष तक अनुबंध पर काम किया, और २०१५ में स्थाई कर्मी बनीं। वह तीन ग्राम पंचायतों में कार्य करती हैं जिनमें आंगनवाड़ी केंद्र भी हैं और उनकी आबादी ५९०० है। इस उप-केंद्र पर दो ए एन एम की नियुक्ति हुई है पर अब दूसरी ए एन एम मातृत्व अवकाश पर है और कविता को अकेले ही काम करना पड़ रहा है। कविता अपने घर से ३० कि मी दूर उप केंद्र पर ही रहती हैं और सप्ताहांत में अपने परिवार से मिलने जाती हैं। झारखंड प्रवासीबहुल क्षेत्र है और इसलिए कविता को लॉकडाउन के दौरान लौटने वाले प्रवासियों के साथ भी निपटने का काम करना पड़ता। कविता ने बताया कि उन्होंने स्वास्थ्य विभाग से मिलने वाले अपर्याप्त सहयोग के बावजूद काम के बोझ और संक्रमण के खतरे का सामना कैसे किया।

लोहरदगा जिला

जनसंख्या: ४६१,७३८ (२०११)

राज्य: झारखंड

भाषा: संथाली, हिंदी

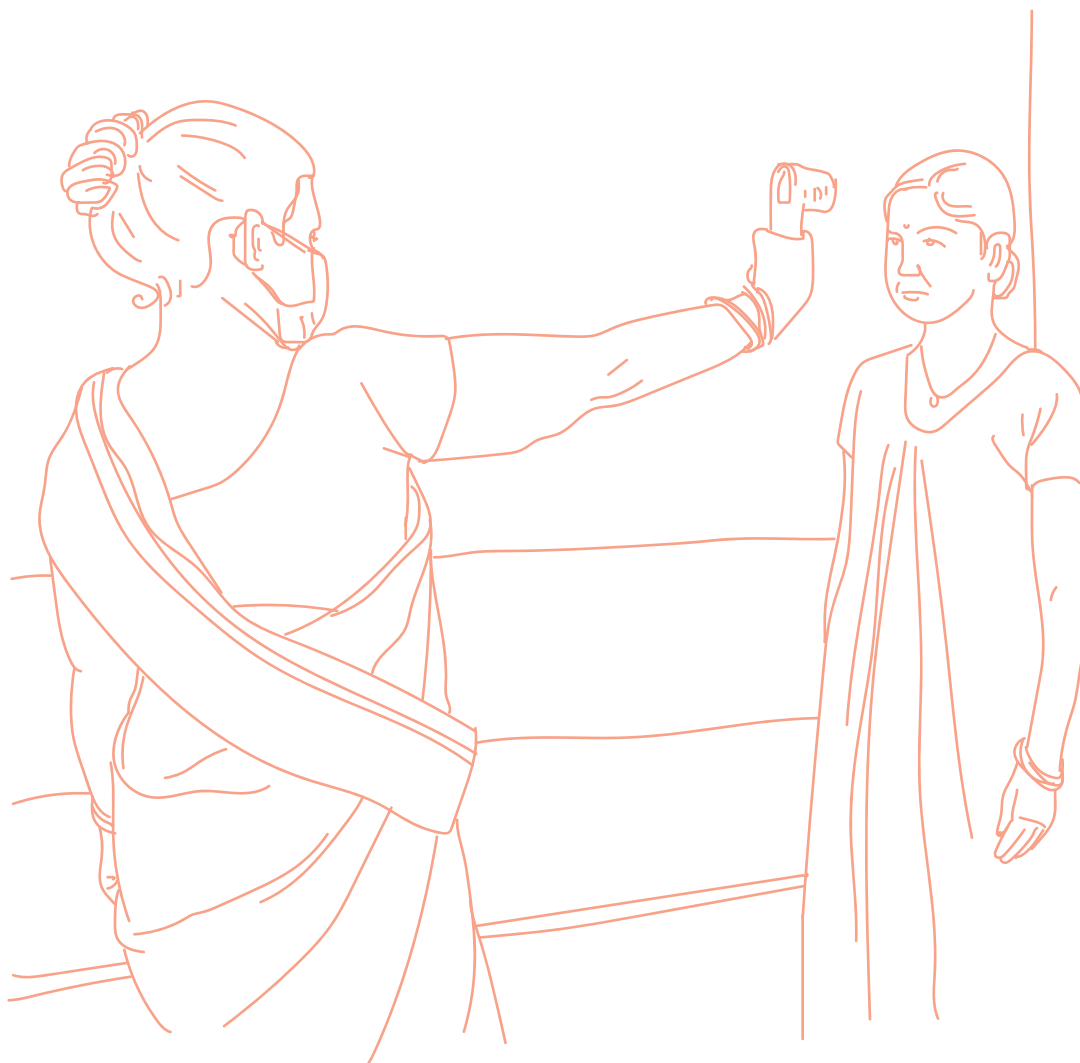


## प्रवासियों और शारीरिक दूरी के प्रश्नों से दो-चार होना

लॉकडाउन के दौरान कई प्रवासी महाराष्ट्र, बिहार, तमिलनाडु और गुजरात से लोहरदगा लौटे। इन सभी का जिले में परीक्षण किया गया और उनके गाँव में ही उन्हें क्वारंटाइन किया गया। कविता ने घर वापस आने वाले प्रवासियों का सर्वेक्षण किया, उनकी यात्रा का इतिहास दर्ज किया और मास्क एवं सैनिटाइज़र के उपयोग के बारे में उन्हें समझाया। कभी-कभी क्वारंटाइन सेंटर पर रात में भी जाना पड़ता और स्वास्थ्य

सेवाएं देनी पड़तीं। कविता उनके घरों में भी गई जिनको घर पर ही क्वारंटाइन किया गया था। परिवहन की सुविधा समाप्त होने की वजह से कविता को ऐसा करना पड़ा। गाँव में क्वारंटाइन की सुविधा अपर्याप्त होने के कारण लोगों को पोल्ट्री फार्म में, पंचायत भवन और स्कूलों में रखा गया। स्त्रियों और पुरुषों को अलग-अलग रखा गया। इन क्वारंटाइन केन्द्रों पर शौचालय या स्नानघरों की व्यवस्था नहीं थी इसलिए लोग शौच के लिए खुले में, दूर-दूर तक जाने के लिए बाध्य होते थे।

उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती लोगों से शारीरिक दूरी के नियमों का पालन करवाना था। ज़्यादातर लोग इस बात पर ध्यान ही नहीं देते। कविता ने एक घटना बताई जिसमें उन्हें कार्रवाई भी करनी पड़ी थी, “मुंबई से लौटने वाले एक शख्स को घर पर क्वारंटाइन किया गया। शारीरिक दूरी बनाए रखने के कई अनुरोधों के बाद भी वह गाँव में घूमता रहा। एक दिन वह छिपकर अपने एक रिश्तेदार के घर डिनर के लिए चला गया। आखिरकार, मुझे उसकी बड़े अधिकारियों से शिकायत करनी पड़ी और अपने मेजबान के साथ ही उसे भी हिरासत में ले लिया गया”।



## फिर से काम शुरू करने की मुश्किलें

कविता ने बताया ओपीडी सेवायें प्रभावित हुईं क्योंकि स्वास्थ्यकर्मियों ने उप-केंद्र में आना बंद कर दिया। गर्भधारण से संबंधित स्वास्थ्य सेवाएं भी रोक दी गईं क्योंकि सारा ध्यान कोविड-१९ पर चला गया। ममता वाहन सेवा (गर्भवती महिलाओं के लिए निशुल्क एम्बुलेंस सेवा) भी प्रभावित हुई और प्रसव पीड़ा होने पर महिलाओं को अपने लिए इंतजाम खुद ही करने पड़े। टीकाकरण सेवायें भी फिर से शुरू करना एक चुनौती था क्योंकि लोगों में भय था और माताओं में डर था कि कहीं संक्रमण न हो जाए, टीकाकरण के लिए बाहर निकलने से इनकार कर दिया। भय दूर करने के लिए कविता ने विशेष बैठकें बुलाई और बच्चों के लिए टीकाकरण के लाभों के बारे में बताया।

कविता को अपने साथ काम करनेवाली छह सहिया (आशा-कर्मी) का सहयोग मिला और उनके अलावा कविता के साथ पंचायत सदस्य, ब्लाक कार्यक्रम प्रबंधक, और अन्य ए एन एम भी थे जो प्रवासियों की वापसी पर उनका परीक्षण करते और उनपर निगरानी रखते। इसके बावजूद उन्हें ऐसे लोगों का विरोध सहना पड़ता था जो महामारी की गंभीरता को नहीं समझ रहे थे। बेरोजगारी जैसी चिंताएं लोगों को अधिक परेशान कर रही थीं; भूमिविहीन लोग भी बड़े त्रस्त थे। काम ढूँढ़ते समय और पैसे कमाते समय ग्रामीणों के लिए शारीरिक दूरी के नियमों का अनुपालन मुश्किल हो जाता।

## जोखिम और कमजोरियों का प्रबन्धन

जिस इलाके में प्रवासियों का आगमन ज्यादा हो वहां महामारी के समय काम करना चुनौतियों से भरा होता है। वापस लौटते प्रवासियों और फ्रंटलाइन के योद्धाओं के बीच संवाद का अभाव से भरोसा तैयार करने में बाधा बनती है। साथ ही सुरक्षा उपकरणों की कमी या अनुपलब्धता स्वास्थ्य कर्मियों के विश्वास को कमजोर करती है।

ए एन एम के पास महामारी के समय रेड ज़ोन से लौट रहे कई प्रवासियों के साथ निपट पाने के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपकरण नहीं हैं। इससे ए एन एम के जोखिम और खतरे बढ़ गए क्योंकि ए एन एम बच्चों के जन्म के समय सामान्य स्वास्थ्य सेवाएं और टीकाकरण का काम भी करती थीं। परिवहन का अभाव एक नई चुनौती खड़ी कर रहा था।

कविता ने कहा: “जब प्रवासी मजदूरों ने घर लौटना शुरू किया तो मैं डरी क्योंकि सरकार की तरफ से मुझे कोई सुरक्षा उपकरण नहीं दिया गया था। मुझे अपने खुद के लिए सैनिटाइज़र खरीदना पड़ा। सिर्फ कुछ दिन पहले ही मुझे कुछ ग्लव्स और मास्क मिले जिनका उपयोग मैं बच्चों की डिलीवरी के दौरान करती हूँ। यदि हमें शुरू से ही पी पी ई किट दिए जाते तो हमारा काम बहुत अधिक सुरक्षित होता।”



# "आशा कार्यक्रम की सबसे बड़ी खामी है यह शब्दाडम्बर जिसमें कहा जाता है 'आशा कर्मी सब कुछ हैं'": कोविड-१९ महामारी के दौरान एक ब्लॉक आशा कार्यक्रम समन्वयक के विचार

गौतम २००९ से उत्तराखंड राज्य में आशा कार्यक्रम के ब्लॉक कोऑर्डिनेटर के पद पर काम कर रहे हैं। इससे पहले, वह उसी जिले के एक एन जी ओ में काम करते थे। उनका निर्धारित ब्लॉक जिला मुख्यालय से करीब १२९ कि मी या चार घंटे की दूरी पर चीन की सीमा पर एक दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में है। उनके लिए अपने इलाके तक पहुंचना एक चुनौती है। मुख्यालय से सबसे अधिक दूर स्थित ब्लॉक का गाँव ५५ कि मी दूर है और वहां पैदल पहुँचने में चार दिन लगते हैं।

ब्लॉक कोऑर्डिनेटर के तौर पर गौतम की जिम्मेदारी आशा-कर्मियों की क्षमता और नेतृत्व का विकास, फील्ड के काम में समन्वय और सहयोग, सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों, राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों, दस्तावेजीकरण आदि कार्यों की देख-रेख और निगरानी जैसे जनगणना के डेटा और मासिक ग्राम स्वास्थ्य योजना, सफाई और पोषण समिति के लिए आशा की मदद से कार्यक्रम अपडेट करना है। अपना काम करने के लिए वह प्रति दिन १० कि मी पैदल चलते हैं।

गौतम ११६ आशा कर्मियों और सात आशा सहायकों का सुपरविज़न करते हैं जो २१ स्वास्थ्य उपकेन्द्रों, दो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और एक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में काम करते हैं और ब्लॉक में बसे ५०,००० लोगों को स्वास्थ्य सेवाएँ देते हैं।



## कोविड-१९ के लिए खुद को और आशा को तैयार करना

गौतम को टेलीविज़न की खबरों से कोविड-१९ महामारी के बारे में पता चला। शुरुआत में उन्हें लगा था कि कोरोना वायरस मुख्य रूप से विदेशों में ही है और भारत पर उसका कोई असर नहीं पड़ेगा, उन्होंने कहा कि वह कोविड-१९ और उसके लक्षणों से अनभिज्ञ थे। स्वास्थ्य विभाग द्वारा मिलने वाले प्रशिक्षण से उन्हें बीमारी के बारे में ज्यादा जानकारी मिली और धीरे धीरे उन्होंने अपने ब्लाक में आशा-कर्मियों को प्रशिक्षण दिया।

गौतम ने कहा कि लॉकडाउन के ऐलान के बाद आशा-कर्मियों को काम करने के लिए समझाना ही एक चुनौती थी, “शुरुआत में आशा-कर्मियों को काम करने में भय लगता था। वे अपने घरों से बाहर भी नहीं निकलती थीं। मैंने उन्हें समझाया कि वायरस से पूरे देश को खतरा है और ऐसे में लोगों को बचाना आशा की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। मैंने उनको प्रोत्साहित किया कि वे आगे आएं और वायरस के खिलाफ लड़ें। उस स्थिति में आशा के लिए मास्क, सैनिटाइज़र वगैरह जैसे सुरक्षा सामान उपलब्ध नहीं थे। उस वक़्त कई लोग यह तक नहीं जानते थे कि सैनिटाइज़र होता क्या है।”

गौतम कहते हैं कि महामारी के दौरान आशा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वे फ्रंटलाइन की योद्धा हैं क्योंकि वे समुदाय के साथ भी और क्वारंटाइन सेंटर में लोगों के साथ भी काम कर रही हैं। लॉकडाउन के पहले चरण में गौतम और उनकी टीम ने ब्लाक के बाहर से घर लौटे और क्वारंटाइन किए गए ३६४५ प्रवासियों का सर्वेक्षण किया। महामारी के दूसरे चरण में थर्मल जांच हुई जिसमें उन्होंने और मेडिकल टीम ने सभी क्वारंटाइन किये गए लोगों की उनके घरों में या फिर निर्धारित स्थानों पर जाकर जांच की। तीसरे चरण में ब्लाक स्तर पर सर्वेक्षण किया गया ताकि कोविड-१९ के लक्षण वाले लोगों को चिन्हित किया जा सके।

## कम तनख्वाह और अभिप्रेरणा का अभाव

गौतम के मुताबिक, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन ने समुदाय प्रक्रिया निर्देशावली तैयार की है और उसके अनुसार ब्लाक कोऑर्डिनेटर की तनख्वाह ३८००० रुपये और आशा सहायकों की तनख्वाह २२००० रुपये तय की गई है। पर उत्तराखंड समेत कई राज्यों में इस पर अमल नहीं किया गया है। ब्लाक कोऑर्डिनेटर को सिर्फ ९००० रुपये महीने में दिए जा रहे हैं।

गौतम कहते हैं: “आशा-कर्मियों को बहुत कम पैसे मिलते हैं। उन्हें प्रति माह २००० रुपये दिए जाते हैं और इसके अतिरिक्त काम पर आधारित प्रोत्साहन राशि भी दी जाती है। आशा सहायक को प्रति दौरे पर ३५० रुपये मिलते हैं और वह महीने में अधिकतम २० दौरे कर सकते हैं। सरकार को उनके बारे में भी सोचना चाहिए और उन्हें कम से कम एक निश्चित मानदेय देना चाहिए”।

“इन फ्रंटलाइन के स्वास्थ्य कर्मियों को नियमित भुगतान न मिलने पर वे हतोत्साहित होते हैं। अपर्याप्त पैसों से फील्ड के काम के उनके खर्च भी नहीं निकल पाते। स्वास्थ्य प्रणाली की अकुशलता और जोखिम के बावजूद वे काम किये जा रही हैं। हालाँकि आशा कार्यक्रम जमीनी स्तर के स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का

सबसे बड़ा नेटवर्क है, फिर भी उन्हें अधिकारियों से बातचीत करने का ज्यादा मौका नहीं मिल पाता”, गौतम ने बताया।

उन्होंने कहा, “यदि वे आगे आना चाहें भी तो उन्हें अधिकारी दबा देते हैं और उन्हें हटा देने की धमकी देते हैं। अपनी नौकरी खोने के डर से कोई सामने आ कर इस शोषण के खिलाफ आवाज़ नहीं उठाता।” गौतम का कहना है कि आशा कार्यक्रम की देखरेख और नियोजन के काम को बहुत कमतर आंका जाता है और इसे महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता। ब्लॉक कोऑर्डिनेटर भी आशा के जरिये कई रोग निरोधक कार्यक्रम को क्रियान्वित करते हैं और यह राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत किया जाता है। इसके लिए अक्सर निगरानी और नियोजन के विस्तृत और विविध तरीके अपनाए जाते हैं। इस योगदान को फिर भी अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है।

गौतम कहते हैं: “हालांकि मुझे अपनी तनखाह समय पर मिल जाती है, फिर भी मुझे और किसी को अपनी तनखाह बताने में शर्म आती है। हमारे काम को देखते हुए यह शोषण ही लगता है। आशा कार्यक्रमों के अलावा हम एन एच एम के कार्यक्रमों को भी क्रियान्वित करते हैं पर एन एच एम ने हमें धोखा दिया है। महीने के अंत तक जब हम दुकानदार, दूध वाले और मकान मालिक के कर्ज में डूब जाते हैं और तब जाकर कहीं अगले महीने की तनखाह आती है।”

गौतम कहते हैं कि स्वास्थ्यकर्मियों के लिए न तो काम करते रहने के लिए प्रोत्साहन है और न ही उनकी हालत को बेहतर बनाने के लिए कोई प्रयास किये जा रहे हैं।

“काम का पूरा बोझ हम पर है, यानी कि ब्लॉक कोऑर्डिनेटर, आशा सहायकों और आशा-कर्मियों पर। यदि कोई कार्यक्रम सफल होता है तो नेता और स्वास्थ्य विभाग के लोग कहते हैं: “हमारी आशा”। पर यदि नाकामयाबी मिले तो प्रशासनिक और चिकित्सा अधिकारी मुझे दोष देते हैं क्योंकि मैं आशा कार्यक्रमों के लिए जिम्मेदार हूँ। ऐसा लगता है कि राज्य सरकार हमें यातना दे रही है। मैं कड़ी मेहनत से नहीं डरता, पर हमें बहुत ही विषम परिस्थितियों में काम करना होता है, हमारा ख्याल रखनेवाला कोई नहीं...ब्लॉक कोऑर्डिनेटर को एक बड़े क्षेत्र की जिम्मेदारी दी जाती है, और इसलिए उनके ठहरने और खाने के खर्च अधिक हैं। फिर भी औरों को दिए जाने वाले प्रोत्साहन और बीमा योजनायें हम पर लागू नहीं की जातीं। यदि कोई ब्लॉक कोऑर्डिनेटर के काम करने के दौरान मर जाए, तो उसके परिवार की देखभाल करने वाला कोई नहीं।”

## आशा के लिए सहयोग का एक आधार निर्मित करना

ब्लाक कोऑर्डिनेटर से महामारी के दौरान आशा-कर्मियों को जमीनी स्तर पर लोगों के साथ काम करने के लिए मानसिक रूप से तैयार करने की अपेक्षा है। गौतम ने स्पष्ट किया कि ब्लाक कोऑर्डिनेटर के तौर पर वह खुद को याद दिलाते रहते हैं कि आशा-कर्मि भी एक स्त्री है जो फ्रंटलाइन पर कर रही है, और उसे अपने परिवार या ग्राम समुदाय से सहयोग भी नहीं मिल रहा होगा। सिर्फ प्रशिक्षण या हुनर सीख लेना काफी नहीं होता।

गौतम का कहना है कि आशा कर्मियों की गतिविधियों पर ज़रूरत से ज्यादा जोर दिया जाता है पर उनके कार्य करने की वास्तविक स्थितियों पर गौर नहीं किया जाता है। यह आशा कर्मियों के साथ साथ स्वास्थ्य विभाग की भी अवहेलना है। बगैर बेहतर वातावरण निर्मित किये और बगैर उनके सहयोग का आधार तय किये आशा कर्मियों को मान्यता देने और पुरस्कृत करने की राजनीतिक बातें आखिरकार नुकसानदेह साबित होंगी।

“एक स्त्री होकर फ्रंटलाइन में काम करना बाधाओं से भरा होता है। एक ब्लॉक कोऑर्डिनेटर के नाते मैं आशा कर्मियों के पास सहयोग के लिए जाता हूँ, ग्राम अधिकारियों के साथ काम करने में उनकी मदद करता हूँ। मैं उनके घरों में जाकर उनके परिवार वालों से भी मिलता हूँ जिससे उन्हें प्रोत्साहन मिल सके। आशा कार्यक्रमों में सबसे बड़ी बाधा यह राजनीतिक बयानबाजी है कि “आशा कर्मि सब कुछ है”। हमें समझना चाहिए कि आशा कर्मि एक नाजुक बेल की तरह है जो स्वयं को नहीं संभाल सकती है। सरकार ने ब्लॉक कोऑर्डिनेटर और आशा सहायकों की अनदेखी की है जो आशा के साथ सहयोगात्मक भूमिका निभाते हैं। कटु सत्य तो यह है की वे भूल जाते हैं कि आशा कर्मि एक महिला है जो ज्यादा शिक्षित नहीं होती और एक सामान्य परिवार से जुड़ी होती है। वह गाँव की एक साधारण बहु जैसी है।”

महामारी के दौरान कुछ आशा-कर्मियों ने सर्वेक्षण और निगरानी रखने का काम रोक दिया एवं तनख्वाह बढ़ाने की मांग की। इस मुद्दे को हल करने की बजाय ब्लाक कोऑर्डिनेटर गौतम को बड़े अधिकारियों ने बाध्य किया कि वह मेडिकल कर्मियों, ए एन एम और वी एच एस एन सी के सदस्यों को बुलाकर आशा-कर्मियों का काम पूरा करवाएं।

## व्यवस्थित तरीके से हुनर खत्म करना

गौतम का कहना है कि काम पर आधारित प्रोत्साहन और लक्ष्य हासिल करने पर जोर देने से स्वास्थ्य कर्मियों में कोई हुनर विकसित नहीं होता। आशा-कर्मों एक श्रम संसाधन बन कर रह जाती हैं और उन पर लगातार कठिन जिम्मेदारियां लादी जाती रहती हैं। यह भी नहीं सोचा जाता कि वे इस काम के लिए प्रशिक्षित हैं भी या नहीं। इस कारण, आशा सहायकों और ब्लाक कोऑर्डिनेटर पर भयंकर दबाव रहता है ताकि कम प्रशिक्षित और उपकरणों की कमी से जूझ रही आशा-कर्मों हतोत्साहित महसूस न करें।

“आदर्श स्थिति में तो नए प्रशिक्षु आशा-कर्मियों को लगातार प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, खासकर कोविड-१९ जैसे काल में। आशा-कर्मियों के लिए भी एक शैक्षिक कार्यक्रम होना चाहिए, क्योंकि उनमें से कई अशिक्षित हैं और आसानी से अपना काम कर पाने में असमर्थ हैं। कई बार आशा-कर्मियों के चयन की शर्तों पर ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि किसी को यह अपेक्षा नहीं रहती कि उन्हें इतनी अधिक जिम्मेदारी दी जायेगी”।

उसने कहा कि स्वास्थ्यकर्मों बरसों तक काम करते रहते हैं और उनके पास ऐसा कोई सुरक्षित मंच नहीं रहता जहाँ वे मुद्दे उठा सकें। “आशा-कर्मों कई महीनों के अंतराल पर अपना मानदेय पांती हैं पर अपने लक्ष्य की पूर्ति में वे कभी भी देर नहीं कर सकतीं। स्वाभाविक है कि वे हताश हो जाती हैं। लक्ष्य समय पर पूरे करने के लिए ब्लाक कोऑर्डिनेटर और आशा सहायकों को बहुत अधिक प्रयास करना पड़ता है। अक्सर हमें आशा-कर्मियों का गुस्सा और उनकी कुंठा झेलनी पड़ती है क्योंकि वे स्वास्थ्य विभाग के किसी अधिकारी के सामने अपनी नाराजगी व्यक्त नहीं कर पातीं।

गौतम ने कहा कि अपनी समस्याओं को उठाने के कोई मंच ना होने के बावजूद स्वास्थ्यकर्मों इसी उम्मीद में काम किये जाते हैं की कभी तो स्थितियां बदलेंगी। फिर भी उनका काम आर्थिक रूप से ही अलाभकारी होने के साथ साथ उनके ज्ञान और हुनर को बढ़ाने में भी निरर्थक साबित हुआ है। गौतम ने बताया: “मैं चालीस साल का हूँ और अपना कीमती समय इस काम को दिया है। मैं महसूस करता हूँ कि मैं पूरी तरह सरकार की कृपा पर जी रहा हूँ।” मुझे महसूस होता है कि मैं असहाय हूँ और मैं दूसरी नौकरी नहीं कर सकता क्योंकि आशा कार्यक्रम चलाने में मेरे अनुभवों के आधार पर मुझे कोई नियुक्ति नहीं मिल सकती।”

# “जब से आशा-कर्मि गाँवों में काम कर रही हैं, स्वास्थ्य संबंधी कोई समस्या नहीं हुई है ”

## फ्रंटलाइन के स्वास्थ्य कर्मियों की परस्पर निर्भरता की स्वीकृति

प्रवीना पिछले ३० वर्षों से ए एन एम के तौर पर काम करती हैं और अपने पति के साथ उत्तर प्रदेश के जालौन जिले में रहती हैं। उनके अधिकारक्षेत्र में छः गाँव हैं। प्रवीना ने बताया कि देशव्यापी लॉकडाउन के ऐलान के बाद ए एन एम और आशा कर्मियों को ब्लॉक कार्यालय बुला कर कोविड-१९ के बारे में विस्तार से बताया गया। उन्हें कुछ घंटे की ट्रेनिंग दी गई और निर्देश दिया गया कि वे लोगों से दूरी बना कर रखने, हाथ धोते रहने, मास्क पहनने को कहें और खुद भी ये निर्देश मानें।

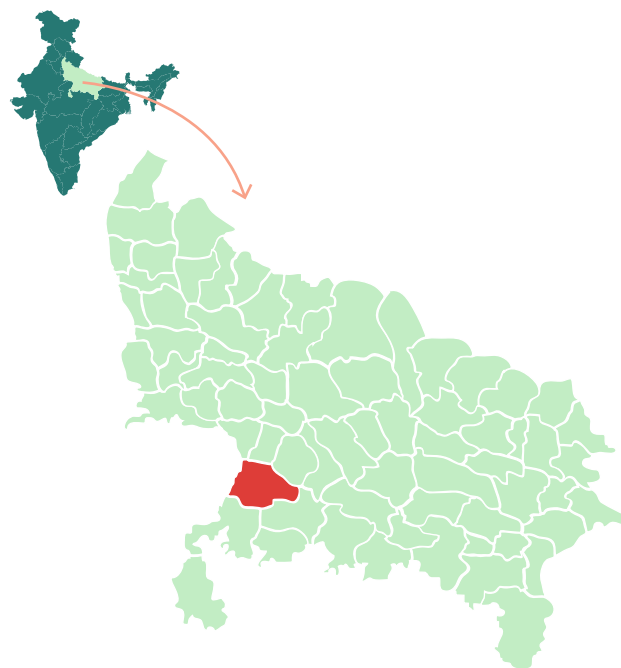
### जालौन जिला

जनसंख्या: १,६७०,७१८ (२०११)

राज्य: उत्तर प्रदेश

भाषा: हिंदी, उर्दू

मुख्यालय: ओराई



## आशा के साथ काम

प्रवीना छह गाँवों में आशा-कर्मियों की टीम का सुपरविज़न करती हैं। उन्होंने दावा किया कि आशा संगठन सामुदायिक स्वास्थ्य का एक स्तम्भ हैं। “आशा-कर्मियों की जिम्मेदारी कई तरह की हैं-वे गर्भवती स्त्रियों की देखभाल करती हैं, उन्हें डिलीवरी के लिए ले जाती हैं, माँ और बच्चे का स्वास्थ्य परीक्षण करती हैं, उनके टीकाकरण पर निगरानी रखती हैं और सर्वे करती हैं। इसके साथ वे आँखों की बीमारियों, टी बी, और कुछ रोग के टीकाकरण संबंधी काम भी करती हैं।”

शुरुआत में, लॉकडाउन की वजह से प्रवीना और आशा दोनों ही फील्ड में नहीं जा पाती थीं। फिर भी, मई २०२० में उन्होंने धीरे-धीरे अपना कार्य शुरू किया और कोविड-१९ सर्वेक्षण भी शुरू कर दिया।

## समुदाय में व्याप्त भय और अविश्वास से निपटना

प्रवीना ने बताया कि समुदाय में जब स्वास्थ्यकर्मी जानकारी देते हैं या कोविड-१९ से जुड़े एहतियात बरतने की बातें भी करते हैं तो लोगों में बहुत अधिक भय और अविश्वास होता है। लोगों को डर लगता है कि उनका परीक्षण होगा और उन्हें क्वारंटाइन कर दिया जाएगा। स्वास्थ्यकर्मियों को संक्रमण फैलाने वालों की तरह देखा जाता है, “सर्वे के दौरान यदि लोगों में खांसी और बुखार जैसे लक्षण होते थे तो उन्हें बताने में संकोच होता था, क्योंकि हम उनसे परीक्षण करवाने या खुद को क्वारंटाइन करने के लिए कहते थे। वे बहस भी करते और हमें गालियाँ भी देते। शुरुआत में बहुत अधिक भय और अविश्वास का माहौल था पर धीरे-धीरे उनकी समझ में आ गया कि परीक्षण करवाना महत्वपूर्ण है।”

इस व्यापक सामुदायिक भय का सबसे अधिक प्रभाव सामान्य टीकाकरण पर पड़ा। प्रवीना ने बताया कि टीकाकरण के बाद यदि बच्चों को बुखार होता तो लोग उसे कोविड-१९ का लक्षण समझते। परिणामस्वरूप, ए एन एम को लोगों का गुस्सा झेलना पड़ता, “गाँव में एक बच्चे को टीकाकरण के बाद बुखार आया। उसका परिवार भयभीत हो गया। हमने लगातार उनसे बात की और बताया कि क्यों इस तरह का टीकाकरण जरूरी है, और तभी वे आश्वस्त हो सके। इस तरह के भय कोविड-१९ से पहले नहीं दिखते थे; इस महामारी के बाद से ही ज्वर के कारण लोगों में भयंकर डर फैल जाता है।”

प्रवीना स्वच्छता और सफाई के सामान्य महत्त्व से अच्छी तरह परिचित हैं पर कोविड-१९ में इसका महत्त्व कई गुना बढ़ गया और सुरक्षा एवं एहतियात के लिए यह जरूरी हो गया। उन्होंने बताया: “हाथ धोना और सफाई रखना अब रोजमर्रा का काम बन गया है”।



# “लोग अनमोल हैं लेकिन हमारी अपनी जरूरतें भी तो हैं”

## विलंबित भुगतान और कठिन परिस्थितियों में काम

दसवीं तक पढ़ी आशा-कर्मि पूजा उत्तराखंड के पिथौरागढ़ जिले में २०१० से २४५ लोगों की छोटी आबादी को स्वास्थ्य सेवाएं देती हैं। उनकी उम्र ५४ साल है, दो बेटियों का विवाह हो चुका है और वह अपने बेटे और पति के साथ रहती हैं। गाँव के ज्यादातर परिवार ऊंची जाति के हैं। उन्होंने बताया कि उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में लॉकडाउन का असर बिल्कुल अलग ढंग से महसूस किया गया। परिवहन की अपर्याप्त सुविधाएँ होने के अलावा इलाके में घर दूर-दूर थे और बिल्कुल अलग-थलग भी थे। निकटतम उपकेंद्र उसके गाँव से दो कि मी दूर है और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र आठ कि मी की दूरी पर। निकटतम सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में पर्याप्त कर्मचारी भी नहीं है और इसलिए वह गर्भवती महिलाओं को डिलीवरी के लिए अन्य सामुदायिक केन्द्रों पर ले जाती हैं जो करीब ३५ कि मी की दूरी पर हैं। लॉकडाउन के कारण यह अलगाव और बढ़ गया है और स्वास्थ्य केन्द्रों पर जाना समुदाय के लोगों के लिए और मुश्किल हो गया है। पूजा ने बताया कि महामारी के दौरान ऐसे मुश्किल हालात में काम करना चुनौती से भरा है।

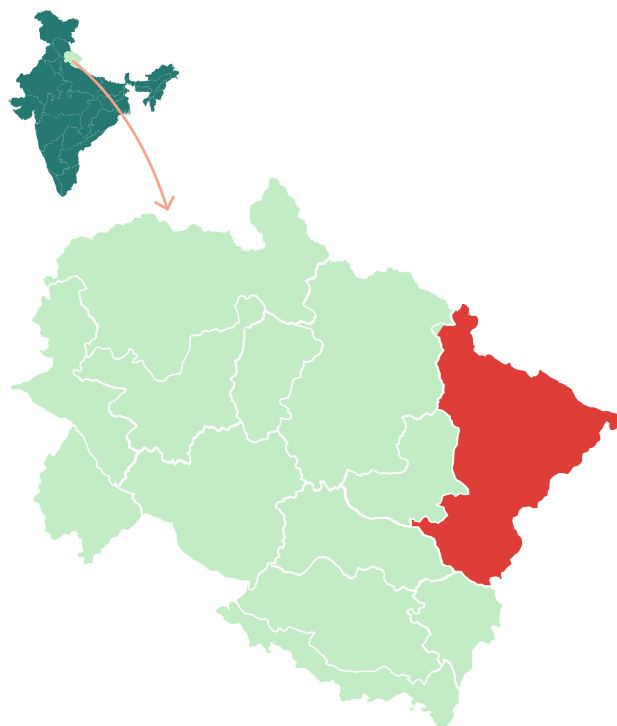
### पिथौरागढ़ जिला

जनसंख्या: ४८५,९९३ (२०११)

राज्य: उत्तराखंड

भाषा: हिंदी, कुमाउनी

मुख्यालय: पिथौरागढ़



## कोविड-१९ और सामान्य काम-काज

कोविड-१९ के बारे में पूजा को ग्राम पंचायत की एक बैठक के दौरान पता चला। उन्हें बताया गया कि गाँव लौट रहे प्रवासियों को चौदह दिनों तक क्वारंटाइन में रखना है और सुनिश्चित करना है कि गाँव वाले हाथ धोते रहें और मास्क पहनें। पूजा ने बताया कि उन्होंने अपने सामान्य आशा संबंधी काम-काज के अलावा कोविड-१९ से जुड़े भी सभी काम किये- गाँव वालों से आग्रह किया कि वे मास्क पहनें, अलग-अलग राज्यों से अपने गाँवों में लौट रहे प्रवासियों को क्वारंटाइन किया जाना और उनके लक्षणों पर नज़र रखे जाना सुनिश्चित करना उनकी जिम्मेदारी थी। अभी तक कोई गंभीर मामले सामने नहीं आये हैं। फिर भी, यदि किसी में लक्षण दिखाई पड़ते हैं तो उस व्यक्ति का प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में परीक्षण करवाया जाता है। यदि उसे संक्रमित पाया जाता है तो उसे करीब १२५ कि मी दूर जिला अस्पताल भेजा जाता है। नियमित परिवहन व्यवस्था न होने की वजह से मैदानी इलाके तक पहुंचना मुश्किल होता है। अस्पताल में बच्चों को जन्म देने की सुविधा के लिए सिर्फ १०८ एम्बुलेंस और छोटे ऑटो उपलब्ध हैं।

पूजा ने कहा कि सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं को चालू रखने के लिए सृजनात्मक सोच की जरूरत है। उन्होंने बताया: “शुरुआत में जब ए एन सी, पी एन सी और बैठकें स्थगित हो गई थीं, हमने निगरानी और महिलाओं से बातचीत का काम फ़ोन के जरिये किया। यदि कोई बीमार पड़ता तो वे फ़ोन करते या मैं उन्हें फ़ोन करती। महिलाओं और बच्चों से फ़ोन पर अलग-अलग बातचीत करने के स्थान पर मैं छोटे समूहों में नियमित रूप से गाँव में बैठकें करती और सभी से बात करती। दूरी कायम रखते हुए उनके जानकारीयों भी देती। इसमें पहले की तुलना में अधिक समय तो लगता था पर कोविड-१९ के नियमों के कारण सामान्य सेवाओं का प्रभावित न होना सुनिश्चित करने का यही एक तरीका था।”

फिर भी, वह सामान्य बीमारियों जैसे ज्वर और टाइफाइड की देखभाल की व्यवस्था करने में सफल नहीं हो पाई हैं क्योंकि प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में दवाओं का स्टॉक सीमित है और वहां डायरिया तथा अन्य सामान्य रोगों की दवाएं नहीं हैं, “खासकर अंधेड़ उम्र के लोग पीठ दर्द, ज्वर और सर दर्द की शिकायतें करते रहते हैं। ये शारीरिक व्यथाएं हमेशा लगी रहती हैं पर हमारे पास उनकी कोई दवा नहीं।”

## प्रवासियों और विलंबित भुगतान की समस्या

मई २०२० में जब पहली बार लॉकडाउन खत्म हुआ तब पूजा के ब्लाक में कई प्रवासी लौटे। कुछ लोग रात १० बजे बाद गाँव लौटते थे। इसका अर्थ यह था कि उन्हें लगातार चौकन्ना रहना पड़ता था ताकि जैसे ही वे आर्यें उन्हें क्वारंटाइन किया जा सके। रात को इस तरह की निगरानी रखना मुश्किल काम था। उनके पति काफी सहयोग करते थे और ऐसी स्थितियों में उनके साथ जाते थे। लोगों को यह समझा पाने में काफी मुश्किल होती थी कि उन्हें स्वयं को क्वारंटाइन करना जरूरी है, “कभी कभी लोग हमारी बात सुनते-समझते नहीं। जब हम क्वारंटाइन करने की बात करते हैं तो वे बेरुखी से जवाब देते हैं। एक बार घर पहुँचने के बाद वे और कहीं क्वारंटाइन में जाना नहीं चाहते। शुरुआत में हम लोगों को सरकारी क्वारंटाइन केन्द्रों पर रखते थे। अब, जिन घरों में ज्यादा कमरे हैं, वहां हम लोगों को घरों पर ही क्वारंटाइन करने की सलाह देते हैं।”

पूजा ने स्पष्ट किया कि महामारी की वजह से समुदाय की जीविका पर असर पड़ा है और भुगतान में विलंब के कारण उनकी निजी आर्थिक स्थिति भी बिगड़ गई है, “लोगों के पास पर्याप्त पैसे नहीं हैं। मेरे घर में भी पैसे का संकट है। मुझे दो हज़ार रुपये मिलते हैं और यह हमें सात या आठ महीने में एक बार ही मिलता है। यदि हमें २००० रुपये हर दूसरे महीने भी मिले, तब भी हम थोड़ा ठीक से रह सकते थे। घर गृहस्थी का खर्च संभाल सकते थे। पर मेरा आखिरी भुगतान तीन महीने पहले जून में हुआ था”।

इससे पहले सर्वेक्षण में आंगनवाड़ी, शिक्षक जैसे अन्य कैडरों को भी शामिल किया जाता था। अब सिर्फ आशा-कर्मि ही यह काम करते हैं। महामारी के दौरान उन्होंने अपने ब्लाक में आशा-कर्मियों की हड़ताल खत्म करवाई। उसने कहा कि आशा-कर्मि बार-बार अपनी जरूरतों के बारे में बताते हैं पर बड़े अधिकारी उनपर कोई ध्यान नहीं देते, “हम अपना काम करती हैं और सभी निर्देशों का पालन भी करती हैं। हर मुद्दे पर हम व्यवस्था का सहयोग करते हैं। जब वे कहते हैं ‘जनता सब कुछ है, वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है’, तो हम उनकी बात मानते हैं, पर हमारी अपनी जरूरतें भी तो हैं”।

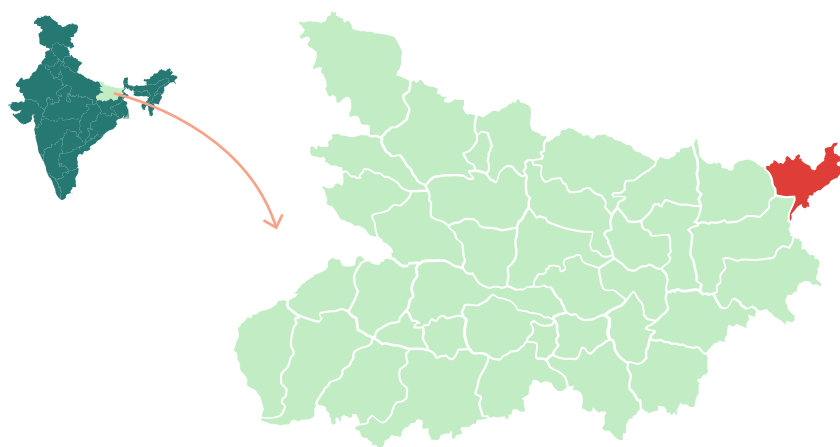
पूजा की सबसे बड़ी परेशानी आर्थिक सुरक्षा का न होना है। उन्हें डर है कि यदि वह काम करते हुए बीमार पड़ गई तो उनके परिवार का क्या होगा। उनकी पीठ में नीचे की तरफ और घुटनों में भी दर्द रहता है और अपने परिवार के भविष्य को लेकर वह असुरक्षित महसूस करती हैं। “वेतन में बढ़ोत्तरी की तो बात ही भूल जाएँ, हमें अपना भुगतान तो समय पर मिलना चाहिए! हमसे से कड़ियों को घर-गृहस्थी छोड़ कर आशा का काम करना पड़ता है। पैसे न भी मिलें तो भी कोई काम करना बंद भी नहीं कर सकता। यदि हम सिर्फ आशा के वेतन पर ही भोजन और अन्य जरूरतों के लिए निर्भर करें, तो हम खाना भी नहीं खा पाएंगे। मेरे पति एक छोटा होटल चलाते हैं, बेटा दसवीं के इम्तहान के लिए तैयारी कर रहा है। यदि हमें कुछ हो गया, तो हमारे परिवार का क्या होगा?”



# "मैंने अपने आप को नियति के हाथों छोड़ दिया है"

## अकेलेपन, मानसिक तनाव और उदासीनता से जूझना

रूचि देवी २००७ से ए एन एम के तौर पर बिहार के किशनगंज के एक छोटे सुदूर गाँव में काम कर रही हैं। महामारी फैलने के बाद से ही उनके लिए घर जाना मुसीबत बन गया है, क्योंकि घर उनके कार्यस्थल से बहुत दूर है। अपने पति और दो बेटों के लिए वह अकेली कमाने वाली हैं। वह उनसे कई महीनों से नहीं मिलीं, उनकी हमेशा याद आती है। अपने परिवार से दूर रह कर महामारी में लगातार संघर्ष करते हुए स्वास्थ्य सेवाएं देते रहना और इस दौरान भावनात्मक उलझन में भी रहना उन्हें कमजोर बनाता जा रहा है। उनका अनुभव दर्शाता है कि कैसे एक व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शांत बना रह सकता है, सामुदायिक सहयोग भी निर्मित कर सकता है और साथ ही एक ऐसी व्यवस्था के खिलाफ भी लचीला बना रह सकता है जिसे उसकी कोई परवाह नहीं।

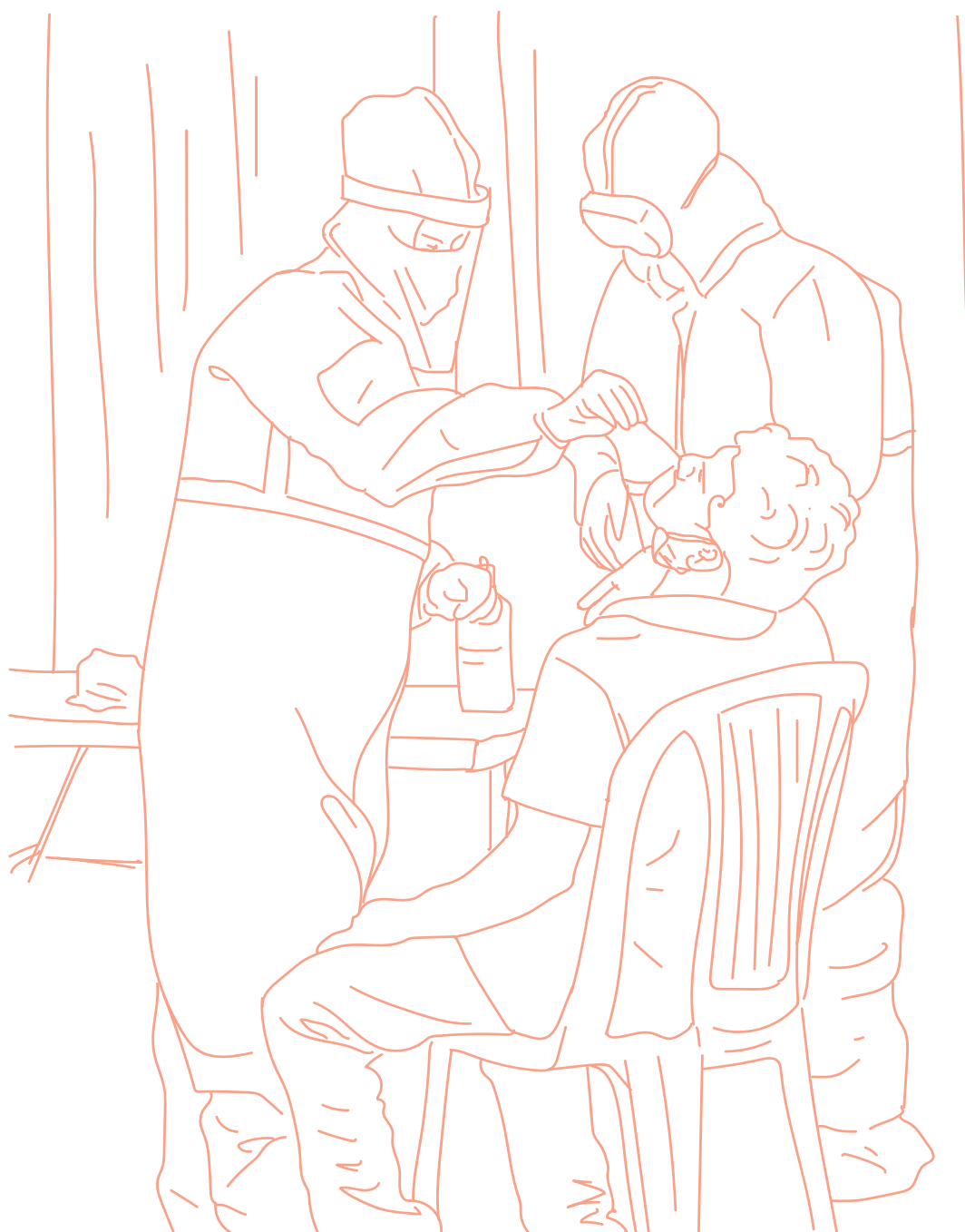


## देखभाल करने का संघर्ष

रूचि देवी आठ गाँवों में स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया करवाती हैं जिनमें कई जातियों और धार्मिक समुदायों के करीब दस हजार लोग रहते हैं। कोविड-१९ के शुरू होने के कुछ महीनों बाद उन्हें यहाँ नियुक्त किया गया और अपने समुदायों के लिए वह अपेक्षाकृत नई हैं। जिस उप-केंद्र में वह काम करती हैं उसमें कुर्सी, परदे, पानी की आपूर्ति, बिजली जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। विभाग की नई इमारत सरकार ने बनवाई तो है पर वह काफी दूर है। निकटतम प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र ५ कि मी दूर है और जिला अस्पताल वहाँ से भी १०० कि मी दूर है। वहाँ पहुँचने में तीन घंटे लगते हैं। यह दूरी स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और समय सीमा पर दुष्प्रभाव डालती है।

## काम का बोझ अधिक, जिस पर कम भुगतान

रूचि देवी ने बताया कि उन्हें पिछले छह महीने से भुगतान नहीं मिला है, ब्लाक की सभी २४ ए एन एम को समय से भुगतान नहीं मिलता। उन सब ने इसके बारे में शिकायत की है पर उनके विरोध की अनदेखी हुई है। सरकारी उत्तर यही है कि वेतन खाते में भुगतान के लिए पैसे नहीं। रूचि ने बताया, “मेरे जैसी ए एन एम को सिर्फ आदेश का पालन करना होता है; हमें बहुत काम करना पड़ता है और पैसे कम मिलते हैं, पर फिर भी हम काम करती रहती हैं, लोगों के जीवन बचाए चली जाती हैं”। ब्लाक स्तर के स्वास्थ्य अधिकारी सहयोग और निर्देशन के लिए फील्ड पर नहीं जाते लेकिन ए एन एम और अन्य कर्मियों से अपेक्षा की जाती है कि वे समुदायों में जाएँ और कोविड-१९ के खिलाफ बहादुरी से जंग लड़ें। इस तरह के अन्यायपूर्ण तौर-तरीके देख कर वह अपने जीवन पर ही सवाल उठाने लगती हैं, उन्हें लगता है कि इस तरह की स्वास्थ्य-व्यवस्था में उनके जीवन की कोई कीमत ही नहीं।



## कोविड-१९ की ड्यूटी का प्रबन्धन

रूचि देवी मानती हैं कि कोरोना वायरस के संक्रमण का उन्हें भय सताता है। इसके बावजूद वह बड़ी व्यवहारिक भी हैं, “यदि मैं भयभीत हो जाऊंगी तो काम कैसे करूंगी? स्वास्थ्य विभाग में होने के कारण मेरे पास रोग से भयभीत होने की कोई गुंजाइश ही नहीं। जो होना होगा वह होकर रहेगा।”

मार्च २०२० में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के जरिये उन्हें कोविड-१९ के बारे में जानकारी मिली, बताया गया कि वह खास तौर पर बुखार, खांसी और सर्दी के लक्षणों को अनदेखा न करें। अप्रैल और मई में उनके इलाके में कई बार जिले के अधिकारीगण आये और उन्होंने थर्मल टेस्टिंग मशीन से ज्वर, सर्दी और खांसी का परीक्षण किया। अपनी ड्यूटी के हिस्से के रूप में वह संदिग्ध बीमार लोगों को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तक ले जातीं और उनका कोविड-१९ टेस्ट करवातीं। लक्षणों को पहचानने के लिए वह घर-घर जातीं और परिवारों को दूरी बना कर, मास्क पहन कर और बार-बार हाथ धोते रहने के लिए कहतीं। वह लोगों को बतातीं कि वे हल्दी मिला कर गर्म दूध पियें, और तुलसी डाल कर काढ़ा पियें।

रूचि छह आशा-कर्मियों की टीम को संभालती हैं। उनमें से हर दो गाँवों की देख-रेख करती हैं। उनकी जिम्मेदारी आशा-कर्मियों को जानकारी देना और महामारी के बारे में सभी उपयोगी जानकारीयों उपलब्ध करवाना है। आशा के अतिरिक्त विकास मित्र (अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण विभाग द्वारा निर्मित सामुदायिक कैडर) और मुखिया (ग्राम प्रमुख) भी क्वारंटाइन के नियमों, मास्क, साबुन और सैनिटाइज़र वगैरह के उपयोग के बारे में जानकारी के वितरण में उनकी मदद करते थे।

कोविड-१९ के नियमों को लागू करना कभी भी आसान नहीं रहा। रूचि ने बताया कि एक बार उन्हें समुदाय का विरोध झेलना पड़ा। “टीकाकरण के दिनों में, मैं गाँव वालों से दूरी बनाकर रखने के लिए कहती हूँ। वे मुझे डांटने लगते हैं और कहते हैं कि उन्हें कोई रोग नहीं होगा, ‘हमें कोई बीमारी नहीं होगी, और यदि हमें बीमारी होती है तो तुम हमारे बच्चों को टीका लगाने आती ही क्यों हो?’” आशा-कर्मियों अक्सर इन चुनौतियों का सामना करती हैं। रूचि ने यह भी बताया कि इस तरह का विरोध दर्शाता है कि जानकारी ज्यादा विस्तार से दी जानी चाहिए। उन जानकारीयों को बाँटने के लिए आशा-कर्मियों से सहयोग भी किया जाना चाहिए।

## अपने प्रिय जनों से दूर रहना

रूचि देवी अपने घर और परिवार से ५०० कि मी दूर रहती हैं। अपने ठिकाने पर वह अकेले किराये पर रहती हैं। अपने परिवार को देखे उनको एक साल हो गया है। इसका असर उनके मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर पड़ा है। इससे पहले उनकी नियुक्ति घर के करीब हुई थी। वह अपने अकेलेपन का सामना करती हैं और कहती हैं: “मुझे किसी बात का डर नहीं क्योंकि मुझे काम करना है और मैंने खुद को नियति के हाथों छोड़ दिया है”।

# “मैं समर्पण भाव से लोगों को कोविड-१९ से बचाने का काम करती हूँ”

## महामारी में शंका और लांछन से बचना

वीथिका छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले में मितानिन प्रशिक्षक के तौर पर काम करती हैं। उनकी देख-रेख में आठ गावों की २२ मितानिन-कर्मि हैं। वह अपने ससुराल वालों और दो छोटे बच्चों के साथ रहती हैं। २०११ से वह मितानिन के तौर पर काम करती थी और २०१५ में प्रशिक्षक बन गईं।

मितानिन प्रशिक्षक के रूप में वह २२ मितानिन के साथ महीने में तीन बैठकें करती हैं, रिकॉर्ड बना कर रखती हैं, दवाओं का वितरण करती हैं और जिला और ब्लाक स्तर पर स्वास्थ्य कार्यक्रमों को क्रियान्वित करती हैं।

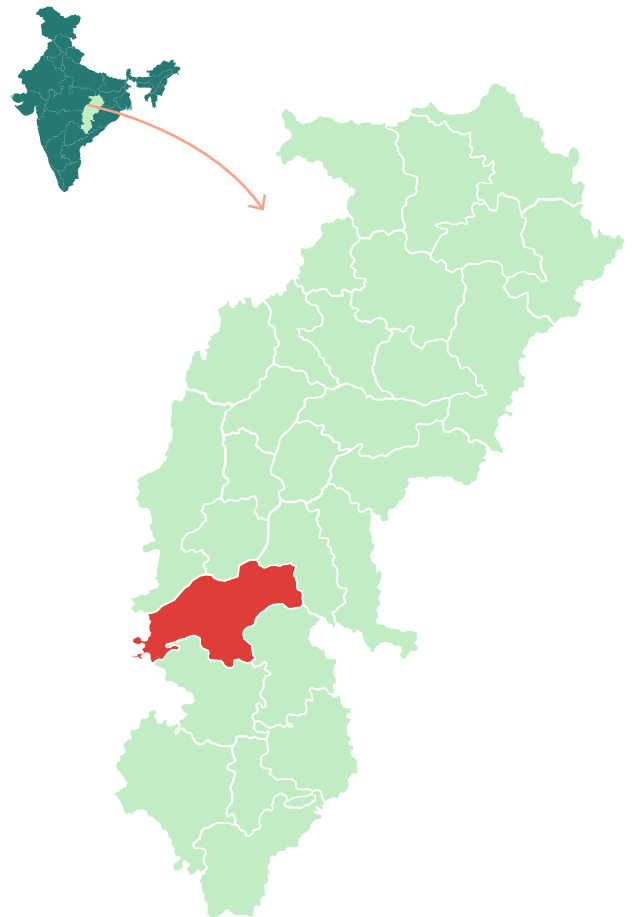
### कांकेर जिला

जनसंख्या: ७४८,५९३ (२०११)

राज्य: छत्तीसगढ़

भाषा: छत्तीसगढ़ी, हिंदी

मुख्यालय: कांकेर





## कोविड-१९ के दौरान काम का बढ़ता बोझ

वीथिका और अन्य मितानिन को कोविड-१९, इसके लक्षणों और एहतियात के उपायों के बारे में चिकित्सा एवं अन्य अधिकारियों ने एक ब्लाक मीटिंग में बताया था। वीथिका ने इसके बाद जानकारी के प्रसार के लिए बैठकें आयोजित कीं और साथ ही एहतियात के नियमों का पालन भी किया। हर मीटिंग के बाद उन्होंने मितानिन की संख्या कम कर दी और अब वह एक बार में छह मितानिन से मिलती हैं। ब्लाक स्तर के स्वास्थ्य अधिकारियों, ग्राम पंचायत और एक स्थानीय एन जी ओ के समर्थन से उन्हें और अन्य मितानिन को ग्लव्स, मास्क, सैनिटाइज़र मिले ताकि वे सुरक्षित रूप से काम कर सकें। महामारी के कारण उनके काम का बोझ बढ़ गया है और अब वह कोविड-१९ के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए नारे तैयार करती हैं, उन्हें दीवारों पर लिखती हैं और घर-घर जाकर लोगों के बीच जागरूकता फैलाती हैं।

वीथिका अन्य गाँवों और राज्यों से आने वाले लोगों का रिकॉर्ड भी रखती हैं। उनके इलाके में ५८ प्रवासी मजदूर लौट कर आये हैं, ४४ को घर पर ही और १४ को अन्य केन्द्रों पर क्वारंटाइन में रखा गया है। वह घर-घर जाती हैं, खास कर उन घरों में जहाँ लोग क्वारंटाइन में हैं, और उनके स्वास्थ्य की जांच करती हैं। उन्हें मास्क पहनने और हाथ धोने की हिदायतें लगातार देती हैं। इसके बावजूद सभी लोग सहयोग नहीं करते। उन्होंने एक घटना बताई जब गाँव वालों ने एक प्रवासी को घर पर क्वारंटाइन नहीं होने दिया। वीथिका को उसे एक आश्रम में क्वारंटाइन की सुविधा देनी पड़ी जो कि गाँव के बाहरी इलाके में था। जब उसकी क्वारंटाइन की अवधि पूरी हो गई तभी उसे गाँव लौटने की इजाजत दी गई।

## बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं के लिए संघर्ष

कोविड-१९ महामारी ने सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं पर असर डाला है। कई बच्चों की डिलीवरी घरों पर ही हुई। आंगनवाड़ी केन्द्रों पर बच्चों को पके हुए गर्म भोजन के वितरण में दिक्कत हुयी तो उन्होंने आंगनवाड़ीकर्मियों के साथ बातचीत की कि वे बच्चों के माता-पिता को सूखा राशन उपलब्ध कराने की मांग की जिससे बाद में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता से पूरा ने किया। उन्होंने बताया कि प्रति बच्चा प्रति हफ्ते ७८० ग्राम चावल, ५२० ग्राम दाल, और ६५० ग्राम गेहूँ आटा वितरित किया गया। एहतियात के उपाय बरतते हुए टीकाकरण और परिवार नियोजन संबंधी सेवाएँ प्रबंधित और नियंत्रित की गईं।

वीथिका ने कहा कि उन्हें अतिरिक्त काम को लेकर कोई फिक्र नहीं। वह स्थिति की गंभीरता को समझती हैं पर विलंबित भुगतान और समुदाय का शत्रुतापूर्ण व्यवहार उन्हें हतोत्साहित करता है। उनके परिवार वाले उन्हें बाहर जाने से मना करते हैं पर वीथिका उन्हें भरोसा दिलाती हैं और लगातार काम किये जाती हैं। वह कहती हैं: “घर में सभी कहते हैं, ‘तुम्हे अपनी और परिवार वालों जान को जोखिम में डाल कर बाहर जाने की जरूरत क्या है?’ पर मैंने महामारी से अपने लोगों को बचाने के लिए पूरे समर्पण के साथ काम किया है।”

# “कॉन्ट्रैक्ट कर्मों की तरह काम करते एक दशक हो गया है”

## कॉन्ट्रैक्ट स्वास्थ्यकर्मों की डामाडोल स्थिति

नीना झारखंड के गुमला जिले में २०११ से कॉन्ट्रैक्ट पर ए एन एम का काम कर रही हैं। उन्हें इसके लिए १२००० रुपये महीने मिलते हैं। वह अपने परिवार के साथ उपकेंद्र के पास रहती हैं। जिस मकान में उपकेंद्र है उसमें न बिजली है, न पानी। वह ऐसा नहीं है कि कोई उसमें रह सके। कॉन्ट्रैक्ट स्वास्थ्यकर्मों का बहुत दमन होता है क्योंकि स्थाई कर्मियों की तुलना में उनकी ज़रा भी सुनवाई नहीं।

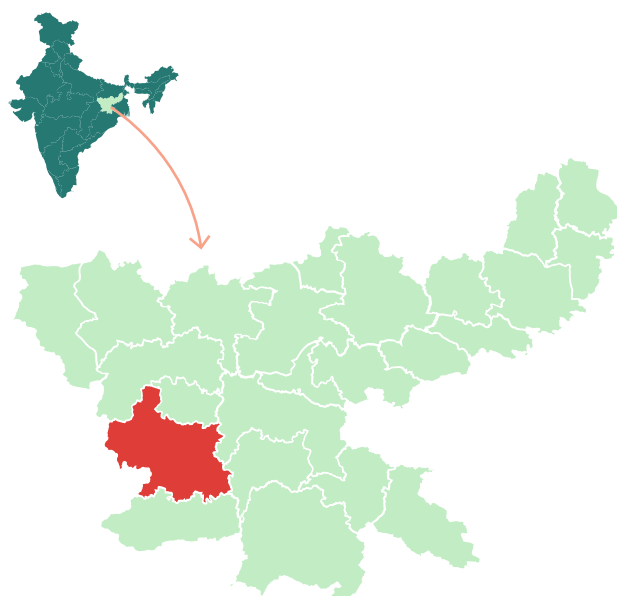
गुमला जिला

जनसंख्या: १,०२५ ६५६ (२०११)

राज्य: झारखंड

भाषा: संथाली, हिंदी

मुख्यालय: गुमला



## कम आय और कोई फायदे नहीं

नीना ने बताया कि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत उप केंद्र को कायम रखने के लिए आवंटित कोष को दस हजार रुपये से घटा कर पांच हजार रुपये कर दिया गया जिससे रखरखाव का खर्च ए एन एम को अपनी जेब से करना पड़ता है। कॉन्ट्रैक्ट कर्मियों पर यह बोझ अधिक पड़ता है क्योंकि उन्हें स्थाई कर्मियों की तुलना में कम भुगतान मिलता है, हालाँकि काम दोनों को बराबर करना पड़ता है। कम बुनियादी सुविधाएँ, धन की कमी, कम तनखाह, नीना को हतोत्साहित और कुंठित करते हैं। वह कहती हैं: “हम गरीबी में रहे हैं। अब मेरे दस साल तक काम करने के बाद भी हमारे बच्चे भी गरीबी में ही रहेंगे।”

कोविड-१९ फैलने से पहले नीना ने किसी नौकरी के लिए आवेदन किया था जिससे उनका करार नियमित हो जाता पर महामारी के कारण सब कुछ थम गया। वह कहती हैं कि १९९१ में आखिरी बार झारखण्ड में ए एन एम का नियमितीकरण किया गया था। सिर्फ प्रजनन और शिशु स्वास्थ्य पर काम करने वाली ए एन एम की सेवाएं नियमित की गई थीं। उन्हें लगता है कि वह फंस गई हैं, सोचती हैं पता नहीं स्थाई नौकरी मिल पायेगी या नहीं। निराश होकर वह कहती हैं: “यदि सरकार अब हमें नियमित कर भी दे, तो हमें मिलेगा क्या? कॉन्ट्रैक्ट कर्मों की तरह काम करते हुए करीब एक दशक बीत गया है।”

ए एन एम की नौकरी की स्थिति ने ही यह तय किया है कि महामारी के दौरान उन्हें प्रशंसा या मान्यता मिली है या नहीं। सभी स्थाई ए एन एम को स्वास्थ्य बीमा या तो दिया गया है, या उन्हें यह देने का वादा किया गया है। महामारी के दौरान काम करने के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन भी दिए गए हैं। संविदात्मक एएनएम को न कोई अतिरिक्त भुगतान मिला और न ही सामाजिक सुरक्षा लाभ।

## कोविड-१९ के दौरान सिर्फ काम करवाया गया, प्रशिक्षण नहीं मिला

कोविड-१९ के लॉकडाउन में नीना को कई बार अलग-अलग जगहों पर जाकर काम करना पड़ा, १५ दिन जिला स्तर पर काम करना पड़ा और फिर १५ दिनों तक क्वारंटाइन सेंटर पर। इसके बाद फिर उपकेंद्र पर काम सौंपा गया। इसके बाद १५ दिनों के लिए क्वारंटाइन सेंटर पर और फिर अपने उपकेंद्र पर। उन्होंने बताया कि कॉन्ट्रैक्ट कर्मियों को अक्सर इसी तरह से जगह-जगह भेजा जाता है। एक बार वह अन्य कॉन्ट्रैक्ट ए एन एम कर्मियों को साथ लेकर सिविल सर्जन से मिलीं और इस विषय पर बातचीत की। अब ए एन एम की ड्यूटी बारी-बारी से लगाई जाती है।

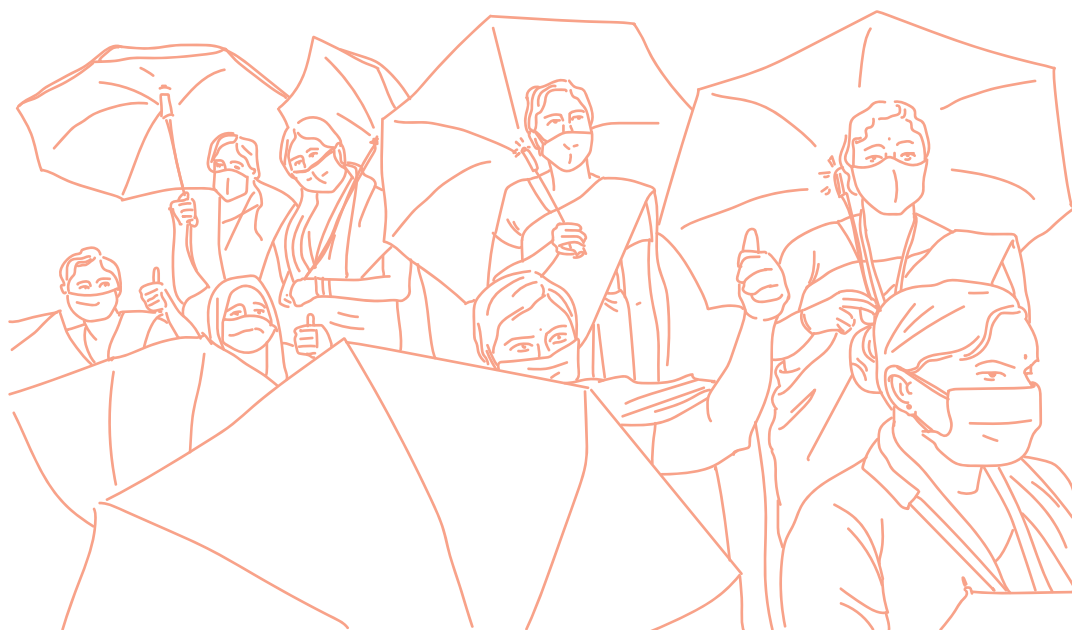
नीना को कोविड-१९ से संबंधित प्रशिक्षण नहीं मिला है। प्रशिक्षण सिर्फ जिला स्तर पर काम कर रही कॉन्ट्रैक्ट ए एन एम को मिला है। नीना ने कहा कि उन्होंने अखबारों, टेलीविज़न की खबरों और सोशल मीडिया के जरिये महामारी के जरिये जानकारियाँ पाईं। हालाँकि उन्हें औपचारिक प्रशिक्षण नहीं दिया गया लेकिन सभी नियमित कार्य करने को दिए जाते। नीना दस बजे से छह बजे तक कई तरह के काम करती हैं जिनमें क्वारंटाइन सेंटर पर सेवाएँ देना, रोगियों को परामर्श देना, महामारी संबंधी नियमों का पालन करवाना, गाँव में लौट रहे प्रवासियों की निगरानी रखना, रिकॉर्ड तैयार रखना, नियमित स्वास्थ्य सेवाओं के अलावा मरीजों को अस्पतालों में भर्ती करने की सिफारिश करना शामिल है।

## संक्रमण के भय के बीच सुरक्षा उपकरणों के बगैर काम

नीना ने बताया कि स्वास्थ्य विभाग ने मास्क या ग्लव्स जैसे सुरक्षा के सामान उपलब्ध नहीं कराए, न ही उनके पास पर्याप्त सैनिटाइज़र है। काम पर जाने के लिए उसे अपना खुद का मास्क और सैनिटाइज़र खरीदना पड़ा। वह लगातार बताती हैं कि गाँव वाले शारीरिक दूरी बनाए रखने के बजाय काम और भोजन की व्यवस्था के बारे में ज्यादा फिक्रमंद हैं, “उनके पास साबुन खरीदने के लिए भी पर्याप्त पैसे नहीं। जब मैं उनसे हाथ धोते रहने के लिए कहती हूँ, तो वे मुझे डांटते हैं और कहते हैं: ‘यहाँ हमारे पास खाने के लिए पैसे नहीं, हम साबुन भला कहाँ से खरीदें’।

राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन के समय ग्रामीण स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस जैसे कार्यक्रम स्थगित कर दिए गए थे। जब वे शुरू हुए तो संक्रमण से बची रहने के लिए महिलाओं ने स्वास्थ्यकर्मियों से दूरी बना ली। आखिरकार नीना उन्हें अपने बच्चों को टीकाकरण के लिए टीके लगवाने को समझा पाई तो शारीरिक दूरी बनाये रखना मुश्किल हो गया क्योंकि उपकेंद्र में भारी भीड़ हो गई। हालाँकि उन्होंने मास्क और सैनिटाइज़र की मदद से सभी काम किये लेकिन वह कहती हैं कि छोटे उपकेंद्र सामूहिक टीकाकरण के लिए पर्याप्त नहीं हैं, “शारीरिक दूरी कायम रखने के लिए बार-बार याद दिलाना मुमकिन नहीं था। साथ-साथ प्रचंड गर्मी में टीकाकरण का काम करना था। बेहतर होता कि ऐसे संकट के समय में ये सेवाएं जिला अस्पताल में ही दी जातीं।”

तनखाह कम है, बुनियादी सुविधाएँ हैं ही नहीं, सुरक्षा के उपकरण नदारद; स्वास्थ्यकर्मि सिर्फ जरूरत और मजबूरी के कारण काम कर रहे हैं। उनकी मेहनत को महत्त्व न देना अपमानजनक है और महामारी उनके जख्मों को गहरा कर रही है।



# “हम बहुत कुछ बर्दाश्त करते हैं। अधिकारी तो हमारे सिर पर बैठे रहते हैं”

## आशाओं, समुदाय और स्वास्थ्य अधिकारियों के बीच संवाद बनाना

करुणा उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले की तीन ग्राम पंचायतों के लिए आशा संगिनी (सहायक) का काम करती हैं। उनके तहत २० आशाकर्मि कार्यरत हैं, एक आशा २५ परिवारों की देखभाल करती हैं। करुणा का काम आशा-कर्मियों की सहायता करना और उन्हें निर्देश देना है, साथ ही कोविड-१९ सर्वेक्षण और क्वारंटाइन ड्यूटी भी करनी पड़ती है।

उन्होंने बताया कि आशाओं के काम में शामिल जोखिम को देखते उन्हें पर्याप्त सुरक्षा उपाय उपलब्ध नहीं करवाए गए, महीनों पहले दिए गए दो मास्क घिस गए तो संगिनियों को अपने पैसों से अपने साथ करनेवाली आशाओं के लिए मास्क खरीदने पड़े। करुणा कहती हैं कि मैं खुद को फंसा सा महसूस करती हूँ, विभाग का दबाव रहता है कि मामूली लक्षणों वाले लोगों की भी जांच की जाए और गाँव वालों को अस्पताल जाने में भी आपत्ति है, वह खुद ही अपना इलाज करते रहते हैं।

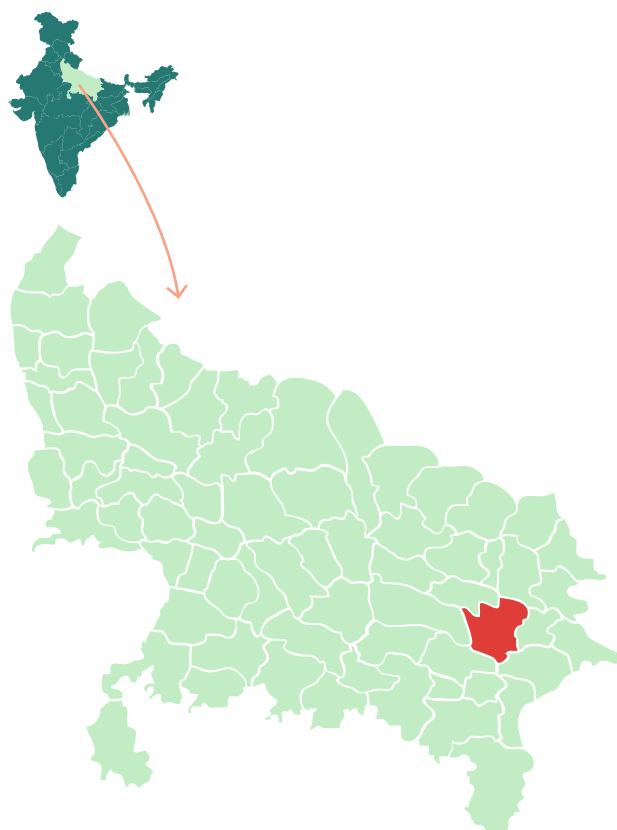
### आजमगढ़ जिला

जनसंख्या: ४,६१६,५०९ (२०११)

राज्य: उत्तर प्रदेश

भाषा: हिंदी, उर्दू

मुख्यालय: आजमगढ़



## रोज़मर्रा के कामों में परेशानी

महामारी के दौरान आशाकर्मियों को जिस बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ा वह यह थी कि वे ना ही लोगों के घरों में जाकर संतोषजनक सेवायें उपलब्ध करा पाती थीं, और ना ही जच्चा-बच्चा की पहले की तरह ठीक से देख भाल कर पाती थीं। शारीरिक दूरी के नियम के कारण आशाकर्मों और सहायक अपने लाभार्थियों के साथ स्वास्थ्य संबंधी निजी बातें खुल कर नहीं कर पाती थीं। करुणा ने बताया, “हम पहले की तरह ही काम करते हैं पर समस्या यह है कि हम लोगों के घरों में जाकर उन्हें छू नहीं सकते, और न ही उनका परीक्षण कर सकते हैं। हम उनसे फ़ोन पर बातें करते हैं और आशा-कर्मों सभी को महामारी से जुड़ी सावधानी बरतने के नियम बताती हैं। पर हम परिवार नियोजन के बारे में प्रभावी तौर पर बातें नहीं कर पाते। हम माताओं को नहीं बता पाते कि वे कैसे सुरक्षित रहें। उनसे बात करते समय हमें उनके दरवाज़े के आस-पास मंडराते रहना पड़ता है।”

करुणा ने स्पष्ट किया कि कोविड-१९ के दौरान आशा कर्मों ग्राम स्वास्थ्य और पोषण बैठक, टीकाकरण बैठक वगैरह नहीं कर पाई, क्योंकि महामारी के दौरान जनसभाएं करने में जोखिम था। इसके अलावा, महामारी से संबंधित अन्य सर्वेक्षण और क्वारंटाइन ड्यूटी भी होती थी इसलिए आशा-कर्मों वे सामान्य स्वास्थ्य बैठकें नहीं कर पाती थीं जो उनके मासिक लक्ष्य के हिसाब से जरूरी थीं। इसका नतीजा यह हुआ कि उनके आर्थिक प्रोत्साहन में कटौती कर दी गई, “आशा-कर्मों जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य बैठकें नहीं कर पाती थीं पर सार्वजनिक सभाओं में दी जाने वाली जानकारी को हम घर-घर जाकर साझा करते रहे। आशा-कर्मियों को बैठकों से जुड़े प्रोत्साहन भी नहीं दिए जाते। ऐसी परिस्थिति में आवश्यक संख्या में बैठकें कैसे की जा सकती हैं? ऑनलाइन बैठकों में हमने यह मुद्दा उठाया कि आशा-कर्मियों को कम भुगतान दिया जाता है हालाँकि हम हर फ़िल्ड दौरे की तस्वीरें बड़े अधिकारियों को व्हाट्सएप पर भेजते रहते हैं।”

## समुदाय और अधिकारियों के बीच पिसना

आशा-कर्मियों और सहायकों के लिए महामारी के बारे में फ़ैली अफवाहों, डरों और स्वयं के प्रति अविश्वास का सामना करना एक बड़ी चुनौती रही। अक्सर लोग परीक्षण कराने से डरते हैं और अफवाहों पर भरोसा करते हैं। मामूली लक्षणों वाले लोग अस्पताल जाने से इनकार कर देते हैं। करुणा ने बताया, “वे नहीं चाहते कि हम उन्हें अस्पताल ले जाएँ, जिद करते हैं कि हम अपना इलाज खुद ही कर लेंगे।” समुदाय में कई लोगों का मानना है कि यदि कोई कोविड-१९ के लिए पॉजिटिव निकला तो अस्पताल में भर्ती किये जाने पर वह शर्तिया मर जाएगा।

कुछ घटनाओं के कारण सरकारी अस्पतालों में लोगों का भरोसा कम हुआ है। कोविड-१९ के एक रोगी की मौत के बाद अंतिम संस्कार के दौरान उसके परिवार ने देखा कि शव की आँखें नहीं थीं और पूरे शरीर में कई जगह काटे जाने के निशान थे, आशाकर्मों को ढेरों गालियाँ सुननी पड़ीं। लोग भयभीत हो गए, उन्हें विश्वास हो गया कि कोरोना वायरस के नाम पर लोगों को मार कर उनके अंगों को चुराया जा रहा है।

“परिवार वालों को कहा जाता कि वे शव के ऊपर लिपटे कवर को न खोलें क्योंकि रोगी की मृत्यु कोरोना संक्रमण से हुई है। फिर भी उन्होंने जिद की और श्मशान घाट ले जाने से पहले कवर को हटाया। उन्होंने

देखा कि शव को काट कर खोला गया था | लगता था उसका पोस्ट मोर्टम किया गया है | यदि रोगी कोविड पॉजिटिव था तो यह कैसे संभव हुआ और इसकी अनुमति किसने दी? तो अब लोग यह मानने लगे हैं कि जिन्हें कोरोना के संदेह में अस्पताल ले जाया जाता है उनका यही हश्र होता है | अब यदि कोई आशा-कर्म किसी को अस्पताल ले जाती है और वह गंभीर मामला होता है, या उसे कुछ हो जाता है तो समुदाय की निगाह में हम ही दोषी होते हैं | वे हमें पीटते हैं | ”

आशा सहायकों को लगातार आशा-कर्मियों का विश्वास बढ़ाते रहना पड़ता है ताकि वह समुदाय के लोगों को समझा सकें कि यदि कोई कोविड-१९ पॉजिटिव होता है तो उसे अस्पताल ले जाना पड़ेगा और घर पर क्वारंटाइन होने के लिए उन्हें निर्देशित किया जाएगा | कई बार करुणा को समुदाय के तनाव को कम करने के लिए संघर्ष करना पड़ा है | गाँव वालों के गुस्से और अविश्वास से आशाकर्मियों को बचाना भी पड़ा है |

एक मामले में किसी ए एन एम ने एक गर्भवती महिला को टिटनेस के टीकाकरण का काम पूरा किया और उसके दो दिन बाद ही महिला को रक्तस्राव होने लगा और उसका गर्भपात हो गया | परिवार ने गर्भवती महिला को इंजेक्शन लगवाने के लिए ले जानेवाली आशा-कर्म को दोषी ठहराया, उसे गालियाँ देने लगे | जब इसकी रिपोर्ट बड़े अधिकारियों को दी गई तो उन्होंने आशा-कर्मियों और आशा सहायक को ही दोष दिया, “वे आशा कर्म को पीटने के लिए तैयार बैठे थे | वहां मौजूद अन्य लोगों ने भी परिवार को शांत करने की कोशिश की | मैंने भी फ़ोन पर और बाद में व्यक्तिगत तौर पर मिल कर परिवार को समझाया क्योंकि वे आशा-कर्म को उसके घर पर गलियाँ दे रहे थे | हम बहुत कुछ बर्दाश्त कर लेते हैं | पर अधिकारी हमारे सिर पर सवार रहते हैं, साथ ही समुदाय के लोग भी दबाव डालते रहते हैं | कभी-कभी तो समझ नहीं आता कि क्या करूं | यदि हम उनको इन घटनाओं के बारे में बताएं तो बड़े अधिकारी भी हमें ही दोष देते हैं | वे कहते हैं कि ये घटनाएं इसलिए हो रही हैं क्योंकि आप लोग पर्याप्त और सही जानकारी नहीं दे रहे | ”

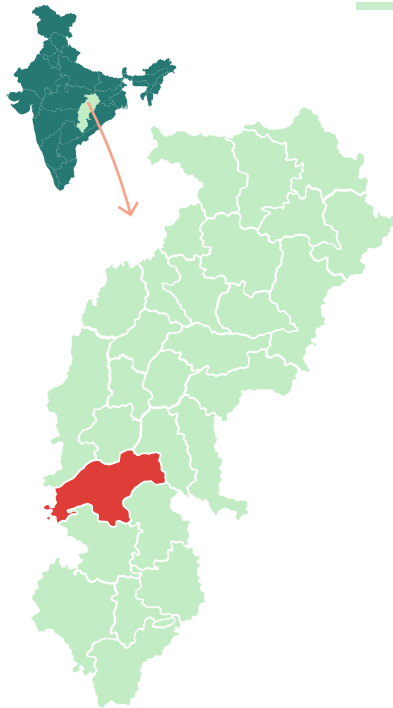
करुणा ने कहा कि ऐसी स्थितियां आशा-कर्मियों पर बहुत अधिक दबाव डाल देती हैं | आशा संगिनी भी इस दबाव को झेलती हैं, और वे आशा-कर्मियों के पास ही दिशानिर्देशन के लिए जाती हैं | प्रोत्साहन में कमी और भुगतान में विलंब से आशा-कर्म और अधिक हतोत्साहित हो गई हैं | करुणा ने बताया कि उनकी मेहनत और जोखिम को देखते हुए सहायकों के लिए एक हजार रुपये का और आशा-कर्म के लिए पांच सौ रुपये का प्रोत्साहन कोई अर्थ नहीं रखता | महामारी के दौरान उन्हें गाँव में बैठकें करनी पड़ती हैं और गाँव वालों के कोप के अलावा अधिकारियों की उदासीनता भी झेलनी पड़ती है |



# “अब हम डर नहीं रहे”

## तनाव, चिंता, डर और घबराहट से उबरना

सुनीता छत्तीसगढ़ के कांकेर जिले की दो बस्तियों में मितानिन के रूप में २०१४ से काम कर रही हैं। इन बस्तियों की आबादी तकरीबन ३०३ है और यहां करीब ७५ परिवार रहते हैं। अन्य मितानिनों और आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के साथ वह यहां के ब्लॉक में स्वयं-सहायता समूहों की भी सदस्य हैं। वह अपने पति और सास-ससुर के साथ रहती हैं। मितानिन के रूप में सुनीता अस्पतालों में, ग्रामीण स्वास्थ्य और पोषण दिवस और आंगनबाड़ी केंद्रों में आयोजित होने वाले टीकाकरण कार्यक्रमों में हिस्सा लेती रहती हैं जहां वे दूसरी पंचायतों से आने वाली मितानिनों और मितानिन प्रशिक्षुओं के समूहों से मिलकर उनसे स्वास्थ्य और पोषण संबंधी विषयों पर चर्चा करती हैं।



## कोविड-१९ और दिनचर्या से जुड़े काम

सुनीता ने कोविड -१९ के बारे में मितानिन प्रशिक्षक और ब्लॉक में काम करने वाले विशेषज्ञों से सुना तो उन्हें वायरस की संक्रामक प्रकृति और इससे बचाव के बारे में पता चला। वहां हर मितानिन प्रशिक्षक को कोविड -१९ के लक्षणों और बचाव से जुड़े तरीकों के बारे में बताने वाले पर्चे दिए गए थे जिनसे सुनीता और उनके साथ गांव में काम करने वाली दो अन्य मितानिनों को काफी मदद मिली। सुनीता कहती हैं, ‘इससे कोविड-१९ के प्रति जागरुकता बढ़ाने के लिए दीवारों पर नारे लिखने और घर-घर जाकर अपनी बात पहुंचाने में मदद मिलती है।’

कोविड से जुड़ी सूचना के अलावा उन्हें कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं दिया गया। स्वास्थ्य विभाग ने दो मास्क और एक सैनिटाइजर की बोटल दी। ग्राम पंचायत से भी सुनीता को दो मास्क मिले। आपदा के दौरान गांव में सुनीता को जागरुकता प्रसार के लिए दीवारों पर नारे लिखने का काम मिला था, इसके साथ ही उन्हें लोगों को कोविड-१९ से बचाव के उपाय भी बताने थे। वह संक्रमित लोगों को स्थानीय प्राथमिक स्कूलों में बनाए गए क्वारंटाइन सेंटर में रखने की सलाह भी दिया करती थीं। चार प्रवासी जब बस्ती में वापस लौटे तो उन्हें क्वारंटाइन सेंटर में अलग रखा गया। उन सबकी देखभाल सुनीता के साथ एएनएम और पंचायत पदाधिकारियों के जिम्मे होती थी।

## एकीकृत संपर्क संजाल - ग्राम पंचायत और स्वास्थ्य से जुड़ी संस्थाएं

ग्राम पंचायत हर घर में मास्क का वितरण सुनिश्चित करती थी, गांव में पिछड़े परिवारों को साबुन, मास्क और सैनिटाइज़र भी मुहैया कराती थी। लॉकडाउन के दौरान लोग सेहत से जुड़ी हर सलाह जैसे घर पर रहें और सब्जियां अपने खेतों और रसोई के बाहर लगाई गई फुलवाड़ी से प्राप्त करें, पर अमल करते थे।। सुनीता दो प्रसवों में भी सहायक बनीं – उन्होंने बच्चे के जन्म से पहले १०८ नंबर पर फोन कर वाहन बुलाया और उन गर्भवतियों को अस्पताल पहुंचाने में सहयोग किया। वह तीन दिन उन दो नई मांओं के साथ भी रही।

सुनीता ने यह भी बताया कि ब्लॉक में टीकाकरण का काम सुचारु रूप से हुआ ताकि सभी बच्चों को नियत समय पर टीके लग सके। नवजातों की जन्म के तुरंत बाद और बाद में भी नियमित रूप से स्वास्थ्य जांच होती रही, साथ ही परिवार नियोजन सेवा भी सुचारु रूप से चली और सभी गर्भवती महिलाओं की वीएचएनडी के दौरान नियमित जांच कराई गई। उन्होंने अपने क्षेत्र के एक पुरुष को नसबंदी के लिए स्थानीय स्वास्थ्य केंद्र भेजा। सुनीता ने बताया कि लॉकडाउन के दौरान गांव की महिलाओं में गर्भनिरोधक गोलियों की मांग बढ़ी।

लॉकडाउन के दौरान आगनबाड़ी केंद्रों में बच्चों को ताजा-ताजा बना गर्म खाना देना संभव नहीं था, इसलिए बच्चों और गर्भवती महिलाओं को एक माह के लिए पर्याप्त सूखे राशन यानि दालें, चावल, सोया बड़ी और आलू का वितरण घर-घर जा कर किया गया।

## कोविड-१९ की चुनौतियां-उत्तेजित लोग, बिफरे समुदाय

गांव के लोगों को शारीरिक दूरी बनाए रखने के लिए समझाना मितानिनों के लिए एक चुनौतीपूर्ण काम था। सुनीता को संक्रमित होने का डर सताता था पर इसके बावजूद उन्होंने सभी तरह की सावधानियों का पालन करते हुए घर-घर जाकर लोगों को जागरूक किया। उनके परिवार को उसका कोविड-१९ से जुड़े काम करना अब भी पसंद नहीं, उन्हें अपने पति को यकीन दिलाते रहना पड़ता था कि वह सभी तरह की सावधानी रखते हुए अपना काम कर रही हैं। पति ने हिदायत दे दी थी कि सुनीता क्वारंटाइन सेंटर से लौटकर घर नहीं आएंगी, वहीं रहेंगी। सुनीता को दो महीने तक गांवों की दीवारों पर जागरूकता के लिए नारे लिखने और घर-घर जाकर लोगों को कोविड-१९ के लिए सजग करने के एवज में मई माह में २००० रुपये मिले।

लगातार स्वास्थ्य सेवा को बनाए रखने और उसकी निगरानी, कोविड-१९ को लेकर अलग से दिया गया काम और आपदा के उस दौर में भी घर-घर जाकर लोगों को देखना और प्रबंधन की इतनी सारी जिम्मेदारी उन्हें अक्सर बोझ सी लगती थी। कभी कभी वह परेशान भी हो जाती थी पर वह कहती हैं कि उन्हें लोगों की सेवा करना पसंद है और वह अपनी जिम्मेदारियों को लेकर प्रतिबद्ध हैं। बकौल सुनीता, "अब हमें डर नहीं लगता। अब मितानिन बने हैं तो काम तो करना पड़ेगा।"

# “हमें केवल ‘कोरोना योद्धा’ कह देने का कोई मतलब नहीं”

## आपदा के दौरान पहचान और सम्मान की मांग

४० वर्षीय खातून पिछले १२ साल से आशा कार्यकर्ता हैं। उनके तीन किशोर बच्चे हैं और पति छोटा सा मछली पालन का व्यापार हैं। वह ओडिशा राज्य के खुर्दा जिला स्थित एक बड़े गांव में काम करती हैं जिसमें एक सबर आदिवासी परिवार सहित बहुत से धर्मों के अनुयायी मिलाकर कुल ६४ परिवार हैं। खातून के साथ गांव में दो और आशा कार्यकर्ता हैं। विविध समुदायों की अलग-अलग तरह की अपेक्षाओं को पूरा करना खातून के काम को और कठिन व चुनौतीपूर्ण बनाता है। उनका अनुभव बताता है कि कैसे अलग-अलग तरह के हितधारकों के सहयोग से ही आशा अपना काम सफलतापूर्वक पूरा कर पाती हैं।

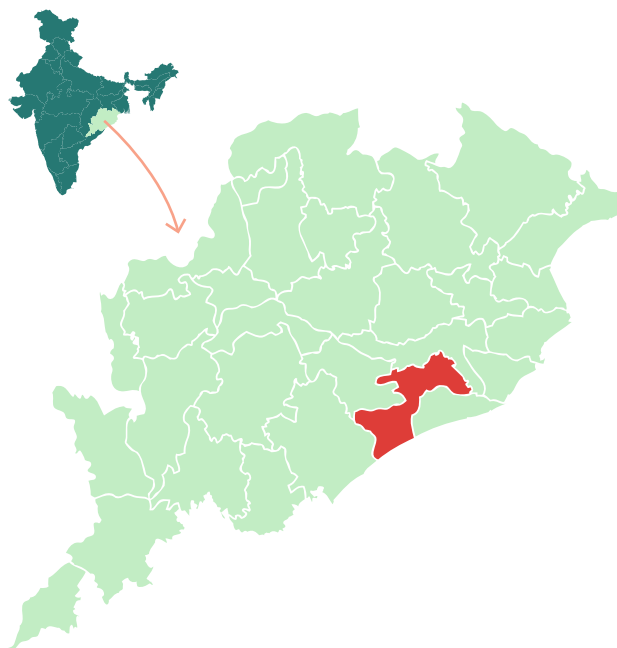
### खुर्दा जिला

जनसंख्या: २,२४६,३४९ (२०११)

राज्य: ओडिशा

भाषा: ओड़िया

मुख्यालय: भुवनेश्वर



## अप्रत्याशित मदद

लॉकडाउन के शुरुआती दिनों में सरपंच यानी गांव का मुखिया, वार्ड के सदस्य, और आंगनवाड़ी कार्यकर्ता घर-घर का दौरा करते समय उनके साथ रहते। वे लोगों से पूछते कि उनमें सर्दी-खांसी या जुकाम के लक्षण तो नहीं हैं, गले में दर्द, खांसी, बुखार होने पर उन्हें घर पर ही रहने की सलाह देते थे। साथ ही यह भी सलाह दी जाती कि यदि जरूरी सामान लेने बाहर जाना पड़े तो वे घर लौटकर जरूर स्नान कर लें, घर पर एक-दूसरे से दो फीट की दूरी बरतें, खासतौर पर बुजुर्गों से दूरी बरतना जरूरी है।

वैसे, कुछ दिनों बाद वार्ड के सदस्य और सरपंच ने साथ आना छोड़ दिया क्योंकि उनको इसके लिए पैसे नहीं मिल रहे थे। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता जरूर खातून के साथ काम करते रहती हैं। खातून कहती हैं कि

गांव में उनके अपने ही समुदाय में उन्हें कम सम्मान मिलता है। दरअसल, लोगों को बुरा लगता है कि एक मुस्लिम परिवार की बहू काम के लिए बाहर निकलने का साहस कर रही है, लेकिन उनका परिवार और खासतौर पर उनके पति काफी मदद करते हैं और उन्हें प्रोत्साहित भी करते रहते हैं। यहां तक कि वह उन्हें काम पर छोड़ने और वापस उन्हें लेने भी आते हैं, 'मेरे पति कहते हैं कि मैं एक स्वास्थ्यकर्मी हूं और डरना मेरे काम में मदद नहीं करेगा। गांववालों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी मेरी है और यह मेरा कर्तव्य है।' खातून को उनके काम में हिंदू समुदाय से सहयोग मिलता है। वह कहती हैं कि आदिवासी समुदायों से बात करने में उन्हें मुश्किल होती है, दरअसल उन का काम करने का अपना तरीका होता है और वे कोविड-१९ से बचाव को लेकर खातून की सलाहों पर खास अमल नहीं करते।

## ‘कोरोना योद्धा’ की इज्जत भला कौन करता है?

गांववालों को घर पर ही रहने के लिए समझाना आसान नहीं था। खातून याद करती हैं, 'लोग कहते थे कि यदि घर पर रहेंगे तो डायबिटीज की जरूरत के मुताबिक कसरत आदि का प्रबंध कैसे करेंगे। मैंने उन्हें बताया कि वे घर पर रहते हुए भी वे अपने ही घर में खुली जगहों पर, अपनी छतों पर नियमित कसरत की जरूरतों को पूरी कर सकते हैं।'

खातून को क्वारंटाइन सेंटर में भी ड्यूटी मिली हुई थी। वह वहां अकेले रहने वाले लोगों से मिलने जातीं, उनके लक्षणों की नियमित जांच, उन्हें पर्याप्त खाना और समय पर दवा मिलना सुनिश्चित करतीं। खातून के रोजाना क्वारंटाइन केंद्रों में जाने से गांव वालों को लगता था कि वह इस संक्रामक बीमारी को फैला सकती हैं इसलिए वे उनसे दूरी बनाते-दूकानदारों को उन्हें सौदा देने से मना करते, संक्रमण के डर के कारण गांव के भीतर उन्हें आने से रोकते। खातून को महसूस हुआ कि उन्हें अपने काम के लिए वह सम्मान नहीं मिल रहा जिसकी वह हकदार हैं, उन्होंने गौर किया कि आशा कार्यकर्ता के प्रति अपमानजनक व्यवहारों को जायज ठहरा दिया जाता है और इसकी कहीं कोई सुनवायी नहीं होती।

खातून नाराजगी जताती हैं, "हमारी चिंता किसे है? हम एएनएम को ऐसे मदद देते हैं जैसे कोई नर्स डॉक्टर की सहायता करती है लेकिन अस्पतालों में लोग हमारे साथ ऐसे पेश आते हैं जैसे हमारा कोई वजूद ही नहीं है। सुरक्षाकर्मी तक हमारे साथ बहुत बुरा सलूक करते हैं, हमें धकेलते हैं, 'अरे आशा, चलो यहां से' यह सब बहुत अपमानजनक है। क्या हम बस 'अरे आशा' हैं (स्थानीय भाषा में किसी को इस तरह पुकारना अपमानजनक माना जाता है)। हम तो कभी उन्हें इस तरह नहीं बुलाते कि 'अरे सुरक्षाकर्मी!' हम इस बात की शिकायत किससे करें?"

"एक ओर लोग हमें 'कोरोना योद्धा' कहते हैं लेकिन जब वे हमें सम्मान न दें तो इसका क्या अर्थ है? हम कैसे अपेक्षा कर सकते हैं कि गांववाले हमारा सम्मान करें जबकि वे देख रहे हैं कि लोग हमारे साथ अस्पतालों में कितनी बुरी तरह पेश आते हैं?"

# “मैंने कोविड-१९ को गांव में घुसने नहीं दिया”

## कार्याशील और सुविधासम्पन्न स्वास्थ्य व्यवस्था की खूबियां

४२ साल की सावित्री राजस्थान के बारों जिले में २००५ से तकरीबन १०११ की आबादी वाले गांव में आशा सहयोगिनी के रूप में काम कर रही हैं। सावित्री सास-ससुर, पति और अपने चार बच्चों के साथ रहती हैं। राजस्थान में सभी आशा-कर्मि स्वास्थ्य विभाग और महिला और बाल विकास विभाग के कर्मियों को जोड़नेवाली कड़ी हैं।

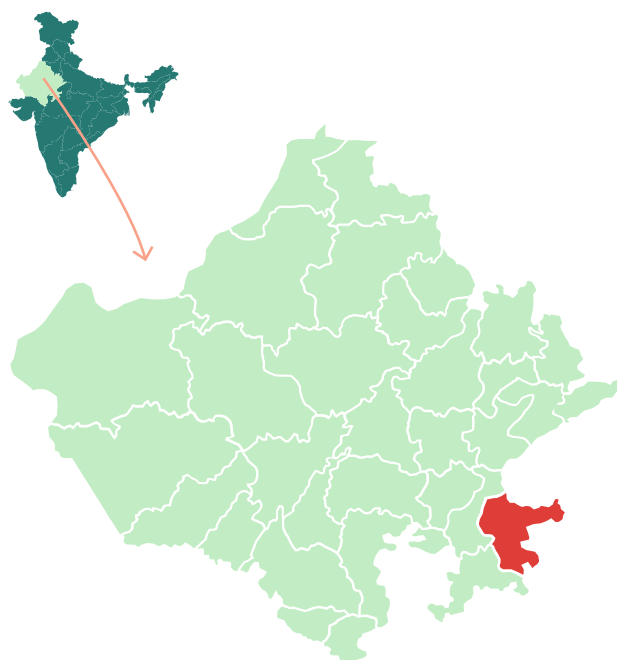
आशा-कर्मि के रूप में सावित्री को महिला और बाल विकास विभाग से प्रति माह २७०० रुपये वेतन मिलता है। इसके साथ स्वास्थ्य विभाग से काम से जुड़े कुछ अलग लाभ भी मिलते हैं। मई माह से अगले तीन माह तक उन्हें १००० रुपये प्रतिमाह मानदेय भी मिला है। कभी-कभी मानदेय मिलने में दो माह से अधिक का वक्त भी लग जाता है। सावित्री जिला स्तर की आशा यूनियन की सक्रिय सदस्य रही हैं जो आशा-कर्मियों की वेतन बढ़ोतरी को लेकर लगातार सरकार से संवाद करती रही है।

### बारों जिला

जनसंख्या: १,२२३,९२१ (२०११)

राज्य: राजस्थान

भाषा: राजस्थानी



## अतिरिक्त कोविड-१९ कार्य

सावित्री को कोविड १९ के बारे में फरवरी २०२० की प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में जानकारी मिली थी। गांव में आयोजित इस मीटिंग में सभी आशा-कर्मि और एएनएम उपस्थित थीं। सावित्री कहती हैं कि वह वायरस के संक्रामक स्वरूप से नहीं डरतीं। दरअसल, डॉक्टर ने उन्हें आश्वस्त किया है कि यदि हम हमेशा जरूरी सावधानी बरतते हैं तो इससे डरने की कोई बात नहीं है। डॉक्टर ने इस वायरस से बचाव के लिए जरूरी विस्तार से सारी सूचनाएं उपलब्ध करायी थीं, यह भी बताया कि कभी कुछ गड़बड़ हो ही जाए तो क्या किया जा सकता है।

सावित्री ने आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के सहयोग से बुजुर्गों ( ६० साल से ऊपर) और गर्भवती महिलाओं का एक सर्वेक्षण किया। राजस्थान में आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को फोन दिया गया ताकि वे ताजा आंकड़ों का संग्रह कर रख सकें। सावित्री आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के साथ घर-घर जाती थीं और कुछ मामलों में वह आंकड़ा संग्रह कर ऑनलाइन उन्हें फोन में भी अपडेट कर लेती हैं।

कोविड-१९ ने निश्चित रूप से उनका कार्यभार बहुत बढ़ा दिया। शुरू में उन्हें एक दिन में बस दस घरों में जाना होता था लेकिन अब रोज़ चालीस घरों में जाना पड़ता है। कोविड-१९ के बाद से काम का माहौल और जिम्मेदारियां भी बदल गई हैं। अब उन्हें घर भी देखना पड़ता है जहां लोग अलग-अलग रहते हैं और अपनी सेहत को लेकर भी सजग रहना होता है।

## टीमवर्क और सहयोग

सावित्री को कोविड-१९ को देखते हुए खुद को मिले अतिरिक्त कार्य का कोई अफसोस नहीं। उन्हें एएनएम, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, स्कूल के प्रिंसिपल और पंचायत सदस्यों से बहुत मदद मिल रही थी। उन्होंने बताया कि एएनएम और आंगनबाड़ी कार्यकर्ता स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम में सावित्री के साथ घर-घर जाती हैं, क्वारंटाइन सेंटर जहां रुककर लोगों स्वास्थ्य की स्थिति की जांच करना होता है, वहां भी वे सभी सावित्री के साथ होती हैं, लोगों की स्वास्थ्य संबंधी जांच के बाद उसकी रिपोर्ट पीएचसी डॉक्टर को देने में भी मदद करती हैं। उन्हें पीएचसी से सैनिटाइज़र की दो बोतलें और तकरीबन एक दर्जन मास्क मिले थे। हालांकि उन्होंने खुद अपने ही घर में मास्क बनाना शुरू कर दिया था इसलिए उन्हें कभी इसकी कमी नहीं हुई। उन्होने कहा कि ऐसे एकजुट सहयोग से उन्हें अपना काम पूरा करने में काफी मदद मिली है।

सावित्री को स्वास्थ्य विभाग के दूसरे अधिकारियों से भी मदद का आश्वासन मिला। उन्होंने सावित्री से कह दिया था कि वह किसी भी मदद के लिए उनके पास आ सकती हैं। ऐसा ही आश्वासन उन्हें पंचायत प्रतिनिधियों से भी मिला जो जांच करते रहते थे कि उन्हें कहीं किसी खास तरह की मदद तो नहीं चाहिए।

वह एक घटना बताती हैं जब उन्होंने स्थानीय हायर सेकेंडी स्कूल के प्रिंसिपल से जरूरी हस्तक्षेप के लिए कहा था। दरअसल, स्कूल में क्वारंटाइन सेंटर बनाया गया था लेकिन वहाँ रखे गए लोग शारीरिक दूरी बनाए रखने और मास्क पहनने के उनके निर्देश का पालन नहीं कर रहे थे। जब सावित्री ने प्रिंसिपल से हस्तक्षेप करने के लिए कहा तो उन्होंने वहाँ आकर गांव वालों को सावधानी बरतने से होनेवाले लाभ के बारे में बताया। सावित्री कहती हैं कि सही समय पर इस तरह का सहयोग मिलने से उन्हें अपने काम को सफलतापूर्वक पूरा करने में बड़ा सहयोग मिला।

## नियमित स्वास्थ्य सेवा का काम जारी रहा

सावित्री की नियमित जिम्मेदारी सामान्य स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना थी। यह लॉकडाउन के बाद मार्च-अप्रैल के दौरान बाधित रहा और मई में शुरू हो पाया। हालांकि पीएचसी यानी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में बहुत सारी सेवाएं लगातार दी जा रही थीं। वह टीकाकरण के लिए लाभार्थियों को पीएचसी में लाती थीं और इसका रिकॉर्ड रखती थीं। गांव के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में शिशुओं की डिलीवरी भी करायी गई, जरूरत पड़ने पर निकट के जिला अस्पताल में या समुदायिक स्वास्थ्य केंद्र में जच्चाओं को भेजा जाता था। वह खुद प्रसव संबंधी दो मामलों को सीधे अस्पताल ले गई। अस्पताल में अधिक भीड़ होने से रोकने के लिए जच्चा के साथ केवल एक व्यक्ति के रुकने की अनुमति थी, इसलिए वह प्रसव तक वहां रुकी भी थीं। गर्भवती महिलाओं की मदद के लिए १०८ नंबर का एंबुलेंस वाहन भी उपलब्ध था।

कोविड-१९ ने सावित्री को सुरक्षा उपायों की जरूरतों के बारे में भी बताया। नई मां और बच्चों को घर जाकर देखने में अब और भी दूसरी चीजें शामिल हो गयी थीं। उन्हें यह भी जांच करना होता था कि घरों में मास्क और सैनिटाइज़र का उपयोग हो रहा है कि नहीं। ग्रामीण स्वास्थ्य और पोषण दिवसों (वीएचएनडी) के तहत गर्भवती महिलाओं और बच्चों के लिए प्रतिरक्षा सेवाएं और सीधे घर तक राशन पहुंचाने का काम दोबारा शुरू किया गया।

सावित्री ने सुनिश्चित किया कि यदि लॉकडाउन के पहले महीने में वीएचएनडी का आयोजन नहीं भी हुआ तो परिवार नियोजन सेवा इससे प्रभावित न हो। लॉकडाउन के दौरान उन्होंने गर्भनिरोधक गोलियों का वितरण किया और गर्भ-निरोधक प्रक्रिया के लिए एक महिला को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र भी ले गई।

सावित्री गांववासियों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए टीमवर्क यानी मिलजुल कर काम करने और सामुदायिक सहयोग की बात दोहराती हैं। वह गर्व से कहती हैं, 'कोविड-१९ के खिलाफ काम करने का मेरा अनुभव अच्छा रहा है। मैंने इस बीमारी से बचाने में समुदाय से सहयोग पाया है। मैंने कोविड-१९ को गांव में घुसने नहीं दिया। अब तक हमारे यहाँ पॉजिटिव केस नहीं मिला है।'

# “मेरे घर-घर पहुंचकर बताने से लोगों को लगा कि मैं गांव में कोरोना फैला रही हूँ”

## आपदा के दौरान संदेह और लांछन

जया देवी झारखंड के गुमला जिले में साहिया साथी हैं। (आशा सहायिका जैसी) उन्होंने २००७ में साहिया के रूप में काम करना शुरू किया, २०११ में उनकी पदोन्नति साहिया साथी के रूप में हुई। वह १४ साहिया के साथ काम करती हैं, ११५ घरों के ५१५ लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं देती हैं। राष्ट्रीय लॉक डाउन के दौरान और कोविड-१९ के समय जया का अनुभव बताता है कि उस समय फ्रंटलाइन में काम करने वाले स्वास्थ्यकर्मी कैसे अपनी जान जोखिम में डालकर काम कर रहे थे और लोगों की जिंदगी बचाने को लेकर कितने प्रतिबद्ध थे। उनके इलाके में प्रवासी मजदूर राष्ट्रीय आपदा के दौरान घर लौट रहे थे जिससे जया का काम और चुनौतीपूर्ण हो गया था।

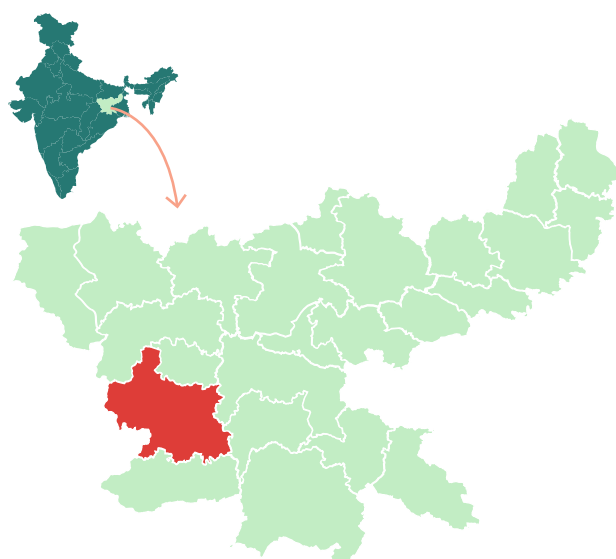
गुमला जिला

जनसंख्या: १,०२५ ६५६ (२०११)

राज्य: झारखंड

भाषा: संथाली, हिंदी

मुख्यालय: गुमला



## कोविड-१९ की ड्यूटी और संसाधन नदारद

कोविड-१९ से जुड़ी गतिविधियों में जया को प्रत्येक घरों का दिन में दो बार सर्वेक्षण करना होता था, रोग के लक्षणों जुकाम, खांसी और बुखार की जांच करनी होती थी, घर लौटे प्रवासियों का १४ दिनों के लिए क्वारंटाइन होना सुनिश्चित करना होता था। इसके साथ जया को घर पर ही अलग रह रहे लोगों को भी देखना होता था और क्वारंटाइन हुए सभी लोगों का रिकॉर्ड रखना पड़ता था। जया कहती हैं कि हालांकि उनका काम बढ़ गया है पर गांव वालों के स्वास्थ्य कल्याण के लिए यह जरूरी है। जया ने चिकित्सा अधिकारी और ब्लॉक प्रोग्राम मैनेजर द्वारा आयोजित एक मीटिंग के दौरान कोविड-१९ से जुड़ा प्रशिक्षण लिया था। उन्होंने इसे ही अपने साथ काम कर रही साहिया के बीच आगे बढ़ाया।



जया को एएनएम से काफी मदद मिल रही थी, वे उनके साथ गांव के दौरे पर जाती थीं। वार्ड के सदस्य और पंचायत के सदस्य भी गांव के दौरे पर उनकी मदद किया करते थे। हालांकि पर्याप्त सुरक्षा उपकरणों के अभाव में जया को उस दौरान असुरक्षा महसूस होती थी, दरअसल उन्हें बस एक छोटी बोतल सैनिटाइज़र और दो ही मास्क मिले थे जो पूरे आपदाकाल के लिए किसी तरह पर्याप्त नहीं थे। स्वाथ्यकर्मियों को लोगों के निकट रहकर काम करना होता है, सुरक्षा संसाधनों की कमी उनके लिए बेहद खतरनाक और जोखिम भरी साबित हो सकती है जया ने कहा कि वह जब नवजात बच्चों या मांओं के करीब जाती थीं तो मन में बहुत शंका रहती थी।

“मेरे पास ग्लब्स नहीं होते थे। बहुत सारी सेवाएं हम नहीं दे सकते थे जिसमें कि मरीज को छूने की जरूरत होती थी- जैसे बच्चे का वजन लेना और उसका तापमान मापना। मैं मांओं से कहती थी कि वे अपनी समझ से बच्चे का वजन कर लें और तापमान भी ले लिया करें। मैं बस नवजात को अपनी आंखों से देख सकती थी और उसके स्वास्थ्य के बारे में एक अनुमान लगा सकती थी।”

## प्रवासियों को क्वारंटाइन करने की चुनौतियां

जया प्रवासियों के गांव लौटने के बाद कोविड-१९ की जांच आदि से जुड़ी गतिविधियां करते सामने आई चुनौतियों को याद करती हैं। प्रवासी उनसे कहते कि हमारे घरों में न आओ। उनमें संस्थागत क्वारंटाइन किए जाने का डर इतना अधिक था कि वे संक्रमित हो जाने की आशंका को खारिज कर देते थे और उन्हें भगा देते थे। ‘मेरे घर-घर जाने से लोग समझते थे कि मैं कोरोना फैला रही हूं। बहरहाल मैंने मुखिया की मदद ली और वार्ड के सदस्यों की मदद से लोगों को कोरोना बीमारी के बारे में समझाया।’, जया कहती है।

शुरू में जो प्रवासी दूसरे राज्यों से आते थे उन्हें स्कूल या पंचायतघरों में रखा जाता था। अब स्वाथ्यकर्मियों को निर्देश दिया गया कि उन्हें घर पर ही अलग रहने कहा जाए। हालांकि कई मामलों में घर पर क्वारंटाइन होना संभव नहीं था। दरअसल, प्रवासी वयस्क परिवार के सदस्यों के बहुत सावधानी बरतने के बाद भी अपने छोटे बच्चों के संपर्क में आ जाते थे। एक या दो कमरे के घरों में शारीरिक दूरी को बनाए रखना कठिन था।

जया एक घटना बताती हैं कि गोवा से लौटकर आए दो वयस्क क्वारंटाइन सुविधा की मांग करने लगे। दरअसल, उनके घर में छोटे बच्चे थे इसलिए वह वहां नहीं रहना चाहते थे। जया ने एएनएम और आंगनवाड़ी कर्मियों की मदद से आंगनवाड़ी केंद्र में ही एक क्वारंटाइन सेंटर बना दिया लेकिन गांव के मुखिया ने कहा कि सरकार ने संस्थागत क्वारंटाइन खत्म कर दिया है इसलिए उन्हें अपने ही घरों में रहना चाहिए। सौभाग्य से चौदह दिनों बाद दोनों ही परिवार सुरक्षित पाए गए।

## आधारभूत सेवाएं उपलब्ध कराने का असमंजस

जया के क्षेत्र में छोटी-छोटी मुश्किलों के लिए भी नियमित जांच की सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं जैसे बच्चों में खांसी, जुकाम और बुखार के मामले बढ़ गए थे। मई में, जब पहले लॉकडाउन की घोषणा के तीन माह हो चुके थे, टीकाकरण सेवाएं रोक दी गईं। उस क्षेत्र में किसी प्रकार का टीका सप्लाई नहीं हो रहा था। जिस व्यक्ति को टीका वितरण का काम दिया गया था उसकी गाड़ी की ड्यूटी अब क्वारंटाइन सेंटर में लगा दी गयी थी। इससे सप्लाई कम हो गई।

जया बताती है कि स्वास्थ्य से जुड़ी आधारभूत सुविधाओं की कमी ने परिवार नियोजन और दूसरी नियमित स्वास्थ्य सेवाओं को कैसे प्रभावित किया, 'गर्भनिरोधक गोलियां और कंडोम पिछले तीन माह से उपलब्ध नहीं हो रहे। योग्य दंपत्ति मेरे पास आते और इनकी मांग करते पर मेरे पास यह खत्म हो चुके थे। यहां तक कि निश्चय किट (गर्भाधान जांच की किट) भी उपलब्ध नहीं थी। बहुत सारी महिलाएं उस किट की मांग करती थीं पर खाली हाथ लौटती थीं।'

जया बताती हैं कि सुरक्षा उपकरणों की अनुपस्थिति और संक्रामक हो जाने का डर उन्हें सेवा का लाभ लेने वालों के पास जाने से रोक देता था। यहां तक कि कभी-कभी जो महिलाएं बर्थ कंट्रोल के लिए कॉपर टी आदि के लिए आना चाहती थीं उन्हें भी डर लगता था। इस बात ने गर्भवती मांओं और बच्चों की स्वास्थ्य सेवाओं को भी प्रभावित कर दिया था, 'मैं गर्भवती महिलाओं का ब्लड प्रेशर और हिमोग्लोबिन की जांच नहीं कर पा रही थी। इस समय तक मैं पूरी तरह से किसी प्रकार के खतरनाक लक्षणों को लेकर जागरुक नहीं थी। यहां तक कि मैं बच्चे के जन्म के समय भी गर्भवती महिलाओं के पास नहीं रह सकती थी। दअरसल, अस्पतालों में अधिक भीड़ होने से रोकने के लिए अस्पताल कर्मचारियों और एएनएम को भी कहा गया था कि वे न आएंगे। केवल कुछ मामलों में जब गर्भवती महिला के परिवार के लोग नहीं होते थे तब मैं उसके साथ होती थी।'

जया को कोविड १९ के काम के लिए १५०० रुपये प्रतिमाह मिलते थे। पिछले तीन माह में उसे कुल ४५०० रुपये मिले और साथ नियमित रूप से मिलने वाले अतिरिक्त मदद भी। उन्होंने कहा कि परिवार की मदद मिलने के कारण वह कम पैसे और पर्याप्त सुरक्षा उपकरण न मिलने के बाद भी अपना काम कर सकती हैं। उनके पति समाजसेवी भी हैं और समुदाय के लिए काम करते हैं।

# “वे जानते हैं कि यदि कोई सेहत से जुड़ी परेशानी हो तो मैं उसकी जिम्मेदारी लूंगी”

## महामारी से पहले समुदाय और स्वास्थ्यकर्मी के बीच मेलजोल की अहमियत

सबिता महाराष्ट्र के पालघर जिले में एएनएम हैं। कम उम्र में शादी हुई, २२ वर्ष और १८ वर्ष के दो बच्चे हैं। बहुत सालों तक गृहिणी बनी रहने के बाद उन्होंने एएनएम के लिए १८ माह का प्रशिक्षण लिया और २०१२ में एएनएम के रूप में काम शुरू किया।

सबिता की पहली तैनाती आदिवासीबहुल इलाके में हुई जहां वह पांच वर्षों तक रही। उन्होंने अलग-अलग सामुदायिक भूमिकाएं निभाईं जिनमें बच्चों के लिए खाना बनाना भी शामिल था। प्यार से उन्हें वहां मौसी (मौसी) दीदी कहते थे। जब उनका स्थानांतरण दूसरे उपकेंद्र में हुआ तो सरपंच यानी गांव के प्रमुख ने उसके सम्मान में विदाई समारोह का आयोजन किया, तब गांव वालों ने उन्हें २५ साड़ियां उपहार में दी थीं। अब वह वर्ली आदिवासी बहुल क्षेत्र में काम कर रही हैं।

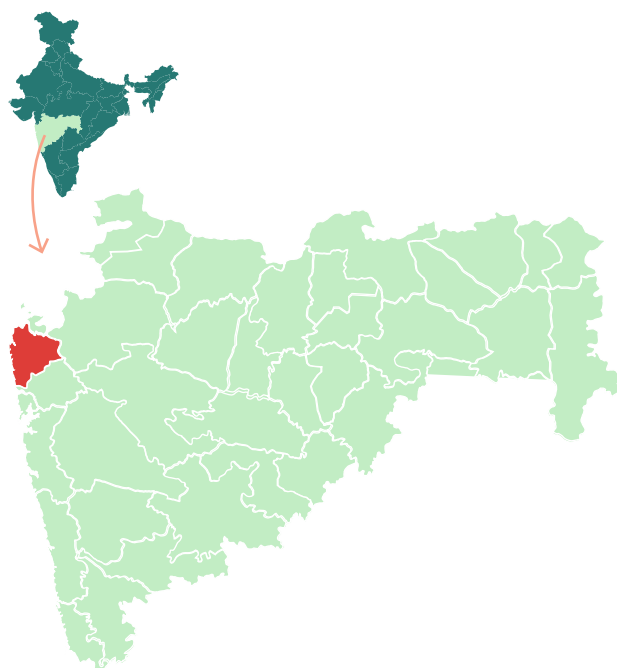
एक मजबूत पारिवारिक और सामुदायिक सहयोग के साथ-साथ पर्याप्त स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी ढांचे के कारण सामुदायिक स्वास्थ्य को लेकर सबिता के जुनून और समर्पण को आगे बढ़ने में काफी मदद मिली। उनका अनुभव इस बात को भी स्पष्ट करता है कि स्वास्थ्यकर्मियों की स्थानीय समुदाय से घनिष्ठता कितनी महत्वपूर्ण है और संकटकाल में स्वास्थ्य सेवाएं सुचारु रूप से दे पाने में कितनी काम आती है।

### पालघर जिला

जनसंख्या: २,९९०,११६ (२०११)

राज्य: महाराष्ट्र

भाषा: मराठी, हिंदी



## परिवार और समुदाय का सहयोग

दूसरी तैनाती में तीन साल के दौरान सबिता ने समुदाय के साथ काफी घनिष्ठ संबंध बना लिए थे। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के कर्मचारियों के साथ सबिता ने भरोसे और मिल जुलकर काम करने की भावना पर आधारित रिश्ता बनाया है। वह गर्व से बताती हैं, 'काम कितना भी क्यों न हो, मैं रोज सुबह साढ़े आठ बजे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र पहुंच जाती हूँ। हमारे यहां दो चिकित्सा अधिकारी हैं, एक नर्स, और सफाई कर्मचारी भी हैं। यदि मैं एक दिन भी चुप रह जाऊँ तो हर कोई परेशान हो जाता है। दरअसल, मैं बहुत उत्साही कार्यकर्ता हूँ, मेरे अंदर बहुत ऊर्जा है। शुरुआती दिनों में जब मैं यहां आती थी तो गांव वाले पूछते थे कि क्या मैं उनकी ही जाति की हूँ। मैं उन्हें कहती कि हां मैं तुम्हीं में से एक हूँ। लोगों का मुझपर बहुत भरोसा है। वे जानते हैं कि उन्हें कुछ स्वास्थ्य संबंधी परेशानी होगी तो मैं जरूर जिम्मेदारी से उनका साथ दूँगी।'

जबसे लॉकडाउन शुरू हुआ वह प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में ही रहती हैं। दरअसल, वहां से उनका घर दो घंटे की दूरी पर है। सबिता ने कहा कि बिना अपने परिवार के सहयोग के वह अपने काम पर एकाग्र नहीं रह पातीं। 'मैं प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में पिछले तीन से माह से हूँ और अपने परिवार से दूर रहती हूँ। इस दौरान मैंने अपनी सास को भी खो दिया। मैं अंतिम दिनों में भी उनसे मिलने नहीं जा सकी। मेरी बेटी हर तरह की जिम्मेदारी निभाती थी। यहां तक कि मेरी सास जब आईसीयू में थी तो उन अंतिम दिनों में भी मेरे परिवार ने मेरा बहुत साथ दिया। अन्यथा मेरे लिए अपना काम इस तरह पूरा कर पाना संभव नहीं था। वे हमेशा मुझसे कहते रहते कि तुम अपना काम करती रहो।'

वह बताती हैं कि चिकित्सा अधिकारी कितना सहयोग करते रहे हैं, 'उन्होंने समझाया कि हमें कोविड १९ से डरने की जरूरत नहीं है और महामारी के दौरान हमें कोविड से बचाव के बारे में भी बताया।' इस तरह का सहयोग और स्पष्ट बातचीत का तरीका बहुत मदद करता है क्योंकि सबिता बताती हैं कि शुरुआती दौर में वह यह सोचकर बहुत घबराती थीं कि महामारी के समय मैं अपने क्षेत्र में कैसे काम करूँगी।

## स्वास्थ्य व्यवस्था में भरोसा तैयार करने का रचनात्मक तरीका

मां और बच्चे को आधारभूत स्वास्थ्य सेवाएं देने के अलावा सबिता कोविड-१९ से जुड़े सर्वेक्षण भी करती थीं। वह क्वारंटाइन करना और रोगियों की स्थिति की पड़ताल भी सुनिश्चित करती थीं। सबिता ने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के कार्यकर्ताओं और समुदाय के अगुआओं के साथ मिलकर कोविड-१९ के बारे में जागरूकता तैयार करने और लोगों को आश्वस्त करने के तरीके निकाले।

सबिता, बहुदेशीय कार्यकर्ता, गांव के मुखिया, आशा और आंगनबाड़ी कार्यकर्ता ने गांव के हर घर में संयुक्त रूप से दौरे किए। वे गांव वाले से कहते कि कोरोना से न डरें और उनसे निवेदन करते थे कि वे अपने संबंधियों से कहें कि जहां हैं वहीं रहें, कम से कम घूमें फिरे। इस तरह के संयुक्त दौरों ने गांव वालों के मन पर बड़ा प्रभाव डाला और वे अपनी इच्छा से शारीरिक दूरी के प्रतिमानों का पालन करने लगे। गांव के मुखिया यानी सरपंच को भी एक काम सौंपा गया। सरपंच से कहा गया कि वे गांव आने वाले प्रवासियों और उनके गांव में इधर-उधर जाने के बारे में ब्योरा रखें।

महामारी के दौरान समुदाय की मदद करने का एक और रचनात्मक तरीका था 'छोटी-मोटी बीमारियों की दवाइयों की किट'। इसमें खासतौर पर सामान्य बीमारियों में काम आनेवाली दवाइयां रखी गयी थीं। आशा-कार्यकर्ताओं को निर्देश दिया गया था कि वे महामारी के दौरान गांव वालों को इन दवाइयों का वितरण करना सुनिश्चित करें ताकि लोग छोटी-मोटी तकलीफों के लिए घर से बाहर न निकलें।

सबिता ने गांव में ही प्रतिरक्षा सेवाओं को जारी रखा। इसके लिए वह आंगनबाड़ी केंद्र का उपयोग करतीं और गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं से कहतीं कि वे टीके के लिए वहां पर एक-एक करके आएँ। किसी ने इसके लिए मना नहीं किया।

शुरू में, जब प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में किसी प्रकार का सुरक्षा का सामान नहीं था, वहां के कर्मचारी घर पर गर्भवती से मिलने या जांच के लिए बच्चे के जन्म के समय प्रयोग में लाया जाने वाला किट और उपलब्ध अन्य सुरक्षा सामान इस्तेमाल करते थे। इस प्रकार शुरू में तो समुदाय के लोग प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के स्टाफ को संपर्क में आने नहीं देते थे, उन्हें संक्रमण का डर रहता था पर इन रचनात्मक तरीकों से अब वे उन्हें स्वास्थ्य जांच की इजाजत दे देते थे।

## नियमित सेवाओं से परे जाकर काम

लॉकडाउन के दौरान प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र चौबीस घंटे खुल होता। यहां सारी स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया करायी जाती थीं जिनमें सांप काटने का इलाज (उस क्षेत्र में यह आम बात है), संस्थागत प्रसव और दूसरी बड़ी बीमारियां भी शामिल थीं। शुरुआत में स्वास्थ्यकर्मी मरीजों को छूने से डरते थे। उन्हें लगता था कि कहीं हमें ही कोविड-१९ का संक्रमण न हो जाए लेकिन इससे अक्सर लोगों को बड़ा बुरा लगता, वे नाराज हो जाते थे। सबिता कहती हैं कि समुदाय में घनिष्ठता बनाने में स्वास्थ्य सेवाएं देने के साथ साथ भावनात्मक आदान प्रदान जैसी बहुत सारी व्यवहारजनित चीजें भी शामिल हैं। आपदा के दौरान लोग स्वास्थ्य जांच के दौरान माथे को स्पर्श करना जैसे शारीरिक स्पर्श की चाहत रखते थे। वे चाहते थे कि मरीजों की शिकायतों पर बस जांच कर देने के बजाय स्पर्श भी किया जाए, लोग इस तरह की स्वास्थ्य जांच को ज्यादा बेहतर देखभाल मानते थे। तब स्वास्थ्यकर्मियों ने स्पष्ट किया कि वे किसी को स्पर्श क्यों नहीं करते, स्पर्श की भरपाई वे उन्हें सलाह देने और बातचीत से कर दिया करते थे।

सबिता ने एक अन्य घटना बताई जब प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र को किसी जटिलता की वजह से एक गर्भवती महिला को किसी दूसरे संस्थान में भेजना था। पर परिवार के सदस्यों ने मना कर दिया क्योंकि उन्हें दूसरे अस्पतालों पर भरोसा नहीं था। तब सबिता और अस्पताल के स्टाफ ने उन्हें समझाया और आश्वस्त किया कि जरूरत पड़ी तो फोन पर हम मौजूद रहेंगे। सबिता कहती हैं कि जरूरत पड़ने पर लोगों को इस तरह का आश्वासन देना जरूरी होता है ताकि लोग समझ लें कि 'हम उनकी जिम्मेदारी लेने के लिए हैं।'

सबिता दोहराती हैं कि समुदाय के निरंतर सहयोग, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के स्टाफ और उसके परिवार ने लगातार प्रेरित रहने और अपने काम के प्रति प्रतिबद्ध रहने में उनकी मदद की।

# सीख और चिंतन

## ‘संकट में प्रकृति और क्षमता का पता चलता है’

डॉक्टर जॉनी ऊम्मन चिकित्सक और सार्वजनिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ हैं। अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी द्वारा २० नवंबर, २०२० को आयोजित ‘रिस्पांडिंग टु कोविड-१९ फ्रॉम अ रूरल हॉस्पिटल’ शीर्षक संवाद के दौरान उन्होंने कहा “हमें अपने सामान्य और शांति भरे समय का उपयोग संकट से उबरने के लिए क्षमतानिर्माण के लिए करना चाहिए। संकट में प्रकृति और क्षमता का पता चलता है | यदि आप पहले से सक्षम नहीं हैं तो संकट के दौरान शायद ही क्षमतानिर्माण न कर पाएं।”<sup>३</sup> हमारे स्वास्थ्यकर्मियों के अनुभवों में उनकी कही ये सारी बातें झलकती है। ऐसी स्वास्थ्य व्यवस्था जो महामारी से पूर्व ही सुचारु रूप से चल रही वैसी स्वास्थ्य व्यवस्था ऐसी संकट से अधिक अच्छे तरीके से निपट सकती है। महाराष्ट्र, ओडिशा, छत्तीसगढ़ के अनुभव रेखांकित करते हैं कि स्वास्थ्य प्रणाली के सुचारु रूप से कार्य करने के लिए संवादतंत्र और फ्रंटलाइन स्वास्थ्यकर्मियों और ब्लॉक, जिले स्तर के स्वास्थ्य प्राधिकारियों के बीच कोविड-१९ के बारे में स्पष्ट संवाद, फ्रंटलाइन के स्वास्थ्य काडर के बीच सहयोग, नियमित वेतन और उपकरणों की उपलब्धता (मास्क, सेनेटाइजर, हैंड ग्लव्स) और दवाइयां कितने आवश्यक हैं।

लेकिन ज्यादातर अनुभवों में दिखा है कि समय पर वेतन और सुरक्षा के उपकरणों के न मिलने से स्वास्थ्यकर्मी कुंठित होते हैं। बहुत से मामलों में स्वास्थ्यकर्मियों के लिए अपनी शिकायतों के समाधान, अपनी बात कह पाने की कोई व्यवस्था नहीं थी जिससे ज्यादातर स्वास्थ्यकर्मी महसूस करते हैं कि वे अलग-थलग पड़ गए हैं और उपयोग के बाद फेंक दी जानेवाली चीज जैसे हैं। सृष्टि की कहानी एक उदाहरण है जो बताती है कि स्वास्थ्यकर्मी मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिख रहे हैं क्योंकि स्थानीय स्वास्थ्य व्यवस्था बार-बार निवेदन के बावजूद उनकी समस्या पर सुनवाई करने में असफल रही। स्वास्थ्यकर्मियों को विरोधाभासी निर्देश दे कर और उन्हें वे जो पहले कर चुके वही पुराने काम सौंप कर परेशान किए जाने के भी बहुत सारे उदाहरण हैं; जैसे शिकायत करने पर उन्हें निकाल दिए जाने की धमकियाँ मिलना, नियमित रूप से संपर्क सत्र आयोजित न कर पाने पर उनको मिलने वाले अतिरिक्त लाभों में से भी कटौती कर लेना; समुदाय के अविश्वास-अफवाहों-गुस्से से निपटने के लिए उन्हें अकेला छोड़ देना, उनसे अपेक्षा रहती है कि सर्वेक्षण और कार्य क्षेत्र में जाने के लिए वे अपना सुरक्षा उपकरण रखें और अपने लिए वाहन का भी बंदोबस्त कर लें।

जैसे-जैसे महामारी का प्रभाव बढ़ा, फ्रंटलाइन के स्वास्थ्यकर्मियों का समय के अनुरूप खुद को ढालने का गुण सामने आया-साथ ही उनकी विवशता और संकट से निपटने की स्वास्थ्य-व्यवस्था की आधी-अधूरी तैयारी भी दिखने लगी। वहीं जहां बेहतर स्वास्थ्य प्रणाली थी, अनुकूल माहौल था, संवाद का एक स्पष्ट माध्यम था, और आपदा को देखते हुए स्वास्थ्यकर्मियों को नियमित वेतन देने को प्राथमिकता दी जा रही थी, वहां किसी तरह का दबाव या कोविड-१९ का डर बहुत कम दिखा; स्वास्थ्यकर्मी उत्साहित, प्रेरित थे और यहां तक कि वे अपने काम को लेकर रचनात्मक भी थे-सबिता और हेमा की कहानी बताती है कि

<sup>३</sup> [https://www.youtube.com/watch?v=MIG\\_oOhNOIw](https://www.youtube.com/watch?v=MIG_oOhNOIw)

कैसे दूरदराज के स्वास्थ्य केंद्रों में कार्य करने के बावजूद उनका कोविड-१९ से जुड़ा अनुभव सकारात्मक रहा। यह ब्लॉक और ज़िला स्तर के उच्च अधिकारियों और योजनाबद्ध स्वास्थ्य-व्यवस्था की कोशिशों के कारण संभव हुआ था।

## भरोसा और मिलजुल कर काम करना मायने रखता है

किमाती, हेमा और सविता ने दिखाया कि भरोसा और मिलजुल कर काम करना कितने मायने रखता है। उन्होंने दिखाया कि समय के साथ मजबूत हुए समुदाय के साथ भरोसे के रिश्ते ने संकट भरे समय में उनके काम को आसान बनाया। एक ओर जहां किमाती पूरे आत्मविश्वास से कहती हैं, 'मुझे गांव के सभी लोगों का सहयोग मिला, मैं और क्या मांग सकती हूं?' और बताती हैं कि इस सहयोग ने न केवल कोविड-१९ से जुड़े कार्यों में बल्कि उसके नियमित स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़े कार्यों को भी बनाए रखने में मदद की, वहीं दूसरी ओर उनका अनुभव यह भी दिखाता है कि समुदाय का सहयोग महत्वपूर्ण है लेकिन केवल यही काफी नहीं है। वह दोहराती हैं कि उन्हें ब्लॉक स्तर के अधिकारियों के साथ ही एएनएम, एलएचवी, ब्लॉक के चिकित्सा अधिकारी और अन्य से लगातार सहयोग और पहचान मिली। इसे सबिता ने और दृढ़तापूर्वक स्पष्ट किया। उन्होंने मिल जुलकर काम करने की ओर ध्यान खींचा, बताया कि कैसे ग्राम पंचायत के मुखिया, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, आशा और वह खुद हर घर में साथ गए। वे लोग जिस तरह लोगों को कोविड-१९ के बारे में बताते थे यह एक तरह से मिलजुलकर जिम्मेदारी निभाने का अहसास कराता था। यही भावना प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में भी नजर आती है-एएनएम, नर्स और चिकित्सा अधिकारियों की पूरी टीम ने महामारी से निपटने की समझ देने के साथ ही मिलजुलकर प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की नियमित सेवाएं मुहैया कराईं। इस तरह के भरोसे और मिलजुलकर काम करने के अहसास ने तीन माह से अपने परिवार से दूर रह रही सबिता की मुश्किल समय में अपना काम बेहतर तरीके से करने में मदद की।

जहां इस तरह की मिलजुलकर काम करने की भावना का अभाव था वहाँ भी, जैसा सृष्टि का अनुभव दिखाता है, आपदा से लड़ने में स्वास्थ्यकर्मियों का अपना संगठन बहुत जरूरी सहयोग (विश्व स्वास्थ्य संगठन की वेबसाइट से कोविड-१९ से बचाव के लिए जरूरी सामयिक सूचनाएं देना जिसमें मास्क बनाना, एक दूसरे के लिए वाहन की व्यवस्था कैसे करनी है, शामिल था) करते थे। इस तरह के संगठन को मजबूती देने और उसे स्वीकार करने की जरूरत है।

अजिया, करुणा और खातून की कहानियां बहुत स्पष्ट रूप से बताती हैं कि फ्रंटलाइन कार्यकर्ता उस समय भयभीत थे और स्वास्थ्यकर्मियों पर भरोसा न कर पानेवाले लोगों के कारण समुदायों में किस तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। स्वास्थ्यकर्मियों पर अकेले ही समुदाय के साथ घनिष्ठता स्थापित करने और उनके साथ घुलने-मिलने की जिम्मेदारी डाल देना आसान है लेकिन असल में इस घनिष्ठता और भरोसे की नींव स्वास्थ्य-व्यवस्था में स्वास्थ्यकर्मियों के कामकाज की स्थितियाँ और स्थानीय स्वास्थ्य केंद्रों द्वारा उपलब्ध कारवाई जा रही सेवा ही है। महामारी के अनुभवों से दिखता है कि स्वास्थ्य-व्यवस्था द्वारा फ्रंटलाइन के स्वास्थ्यकर्मियों को दिए जानेवाले सम्मान एवं मूल्य और समुदाय के उन पर भरोसे के बीच सीधा संबंध है। उनकी कोशिशों को नाममात्र महत्व देना और प्रशंसा करने की बजाय, समुदाय के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए उनके भावनात्मक और शारीरिक श्रम की सचमुच प्रशंसा करना महत्वपूर्ण है। यह व्यस्थागत रूप से आर्थिक प्रोत्साहन, नियमित प्रशिक्षण और संवाद से ही संभव होगा।

## सामुदायिक स्वास्थ्य में लगे कार्यकर्ता सक्रिय 'विचारवान' प्रतिनिधि हैं, केवल आंकड़े जुटाने वाले लोग नहीं

यह विवरण ध्यान दिलाते हैं कि फ्रंटलाइन के स्वास्थ्यकर्मी का काम किसी पद के तय कामों से कुछ आगे बढ़कर होता है। समुदाय से घनिष्ठता का संबंध बनाने के निरंतर प्रयास, अफवाहों-भय-मनगढ़त किस्सों से निपटना, स्थानीय अधिकारियों और अगुवाओं के बीच रचनात्मक तरीके से समस्याओं से निपटना इत्यादि सामुदायिक स्वास्थ्य-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए बहुत ज़रूरी होता है; अक्सर इन सबको महिला स्वास्थ्यकर्मियों के स्वाभाविक गुण मान लिया जाता है। उनके द्वारा बताए गए अनुभव स्पष्ट करते हैं कि वे महज आंकड़े जुटाने वाली नहीं बल्कि 'विचारवान' सामुदायिक स्वास्थ्य पेशेवर हैं। हालांकि शिल्पा और गौतम जैसे कुछ अनुभव संकेत देते हैं कि स्वास्थ्य विभाग ने कैसे व्यवस्थाबद्ध ढंग से उन्हें कौशलविहीन बनाया और उन्हें ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया जहां वे लंबे कार्य अनुभव के बाद भी उपयोगी नहीं माने जाते। बरसों काम करने के बाद स्वास्थ्यकर्मियों के पास हर तरह की जानकारी होती है और क्षेत्र में काम का लंबा अनुभव होता है, आदर्श स्थिति में यही बात महामारी के दौरान समुदाय की उनसे प्रत्याशा को पूरा करने में काफी मदद करती लेकिन अपने ही विभाग से आदर न मिलना, उनका बहुत कम वेतन और इस कारण कुछ मामलों में उनको समुदाय में इज्जत न मिलना जैसे कारकों के चलते उनकी वास्तविक योग्यताओं पर ग्रहण लग जाता है।

हमारा लक्ष्य फ्रंटलाइन के कार्यकर्ताओं के अनुभवों को उन्हीं की निगाह से प्रस्तुत करना है। एकपक्षीय तस्वीर चित्रित करने के बजाय हम एक ऐसे क्रियाशील समूह के रूप में उनकी ओर ध्यान खींचना चाहते हैं जो थक चुका है, जिसे वेतन नहीं मिल पाता और आपदा के दौरान जिसकी अनदेखी की गई लेकिन फिर भी वे लोचदार-समर्पित-रचनात्मक और स्वास्थ्य-व्यवस्था में सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम कर रहे हैं। हम देख रहे हैं कि परिवार, समुदाय और स्वास्थ्य-व्यवस्था के स्तर पर अनेक फ्रंटलाइन या सीमाएं हैं और महामारी सभी स्तरों पर उनकी परीक्षा ले रही है। वे सचमुच ही फ्रंटलाइन योद्धा हैं!





**Azim Premji University**

Pixel Park, PES Campus, Electronic City, Hosur Road  
Bangalore 560100

080-6614 5136

[www.azimpremjiuniversity.edu.in](http://www.azimpremjiuniversity.edu.in)

Facebook: [/azimpremjiuniversity](https://www.facebook.com/azimpremjiuniversity)

Instagram: [@azimpremjiuniv](https://www.instagram.com/azimpremjiuniv)

Twitter: [@azimpremjiuniv](https://twitter.com/azimpremjiuniv)